स्थापन दिवस के 24वें वर्ष में प्रवेश

संयम • संस्कार • सन्तुलन

शहर समता

शोध पत्र

'कर्मक्षेत्र रणभूमि यही है, मानव हो तुम कर्म करो।
कर्म से कभी विमुख न रहना, मन में यह संकल्प करो।'-
उमेश श्रीवास्तव

(हिंदी साप्ताहिक)

संस्थापकः स्व0 कन्हैया लाल,
स्व0 श्रीमती साधना श्रीवास्तव

राजेन्द्र सिंह विशेषांक

सम्पादकः उमेश चन्द्र श्रीवास्तव

www.shaharsamta.com

अंक 43 | वर्ष 24

रविवार, इलाहाबाद, 23 मार्च 2025

R.N.I.- UPHIN/2001/3996 ISSN- 2581-6128

राजेन्द्र सिंह

स्थापन दिवस के 24वें वर्ष में प्रवेश

संयम • संस्कार • सन्तुलन

शहर समता

शोध पत्र

(हिंदी साप्ताहिक)

'कर्मक्षेत्र रणभूमि यही है, मानव हो तुम कर्म करो।
कर्म से कभी विमुख न रहना, मन में यह संकल्प करो।'-
उमेश श्रीवास्तव

संस्थापकः स्व0 कन्हैया लाल,
स्व0 श्रीमती साधना श्रीवास्तव

राजेन्द्र सिंह विशेषांक

सम्पादकः उमेश चन्द्र श्रीवास्तव

www.shaharsamta.com

अंक 43 वर्ष 24

रविवार, इलाहाबाद, 23 मार्च 2025

R.N.I.- UPHIN/2001/3996 ISSN- 2581-6128

इस अंक में...

आत्मकथ्यः राजेन्द्र सिंह
राजेन्द्र सिंह ...2

बड़े भाई का चंदोवा छत पर होना
रविनंदन सिंह ...6

जमीन के खुरदुरेपन का एहसास करातीं कविताएँ
डॉ. पी एन सिंह ...9

राजेन्द्र सिंह का संवेदनात्मक सृजन बोध
कामेश्वर द्विवेदी ... 13

व्यापक जीवनानुभव का काव्य
प्रो. रामकिशोर शर्मा ...18

'कुछ कदम साथ मेरे आइये': राजेन्द्र सिंह
नंदल हितैषी ...21

विशाल आनुभूतिक क्षितिज का काव्य
डा० जितेन्द्रनाथ पाङ्गक ...26

यादों का साहित्यिक सफर और बाबू राजेंद्र सिंह
डॉ. वेद प्रकाश पांडेय ...29

कवि राजेन्द्र सिंह का रचना संसार
दिव्यलता शर्मा ...34

बात लगी होगी और मर गये होंगे
प्रो.योगेंद्र प्रताप सिंह ...39

राजेन्द्र सिंह की कविताएं ...41

रविवार, इलाहाबाद, 23 मार्च 2025

राजेन्द्र सिंह विशेषांक

पचहत्तरवें वर्ष में कर गए प्रवेश,
राजेंद्र सिंह है नाम, उन पर अंक विशेष।
माटी के वह लाल हैं,बुद्धि में प्रवीण,
लिखते हैं वह हर घड़ी, नया-नया नवीन ।

तो बात हो रही है गाजीपुर के वरिष्ठ रचनाकार राजेंद्र सिंह की । गांव की माटी में पले-बढ़े, शिक्षा-दीक्षा , अध्यापन सब वहीं किया । कवि के रूप में उनकी
अलग पहचान है। मुक्तक के विशेष प्रणेता, राजेंद्र सिंह के सभी मुक्तक बेजोड़ हैं।
देखिए वह कहते हैं-

जिंदगी के लिए ही जीना है,
घुट घुट अश्कों को रोज पीना है।
कौन कहता है सिर्फ मिट्टी है,
परखो, जांचों यही नगीना है।

गांव की सोंधी माटी के लाल राजेंद्र सिंह की कविताओं में गांव से जुड़ी अनगिनत यादें झलकती है । उनकी कविताओं में शिल्प का कसाव है। छोटी-छोटी पंक्तियों में बड़ी-बड़ी बातें कहने वाले कवि राजेंद्र सिंह का कविता संसार इसी वजह से उन्हें एक अलग मुकाम देता है। कवि राजेंद्र सिंह ने कुछ मुक्तक भोजपुरी में भी लिखे हैं जो बेहतरीन हैं। राजेंद्र सिंह की कविता की बानगी देखिए -

शब्दों में ढाल रहे
आँसुओं के छंद
मूढ़ मतिमंद
रोको अजस्त्र प्रवाह
करो कहानी यह बंद
अपना पेबन्द टाँकने का
भद्दा यह ढंग
भगीरथ बन तारो
आँसुओं के सैलाब से उबारो !

व्यापक फलक के रचनाकार कवि राजेंद्र सिंह पर शहर समता के इस 8 पेजी विशेषांक में जितना आ सका उसे रखा गया है । बाकी निर्णय आप स्वयं करिए की कवि राजेंद्र सिंह अपने रचना संसार को
लेकर साहित्य के किस मुहाने पर खड़े हैं। जिन विद्वानों का इस अंक में लेख समाहित है हम उन्हें हृदय से धन्यवाद देते हैं। अंक कैसा लगा, प्रतिक्रिया जरूर दीजिए ।
 अंत में -

लिखने को सब लिख जाते हैं ,
अच्छी-अच्छी बात ।
लेकिन जो भी इसमें जीता ,
वही सही है तात ।

आत्मकथ्यः राजेन्द्र सिंह

राजेन्द्र सिंह

न मैं कवि हूँ और न कविता का व्यापारी, मेरी कविता समय और परिस्थिति की उपज मात्र है, जिसे शब्दों में रख दिया गया है। मैं मूलतः साहित्य प्रेमी हूँ। इसी प्रेम के कारण मैने वर्ष 1978 में सौरभ साहित्य परिषद बरूइन, जमानिया की स्थापना कर स्थानीय कवियों, साहित्य प्रेमियों के सहयोग से प्रत्येक माह की सत्रह तारीख को कवि गोष्ठी एवं विचार गोष्ठी का आयोजन प्रारम्भ किया जिसमें वरिष्ठ कवि-ग़ज़ल कार स्व0 हरिवंश पाङ्क ‘गुमनाम’ तथा स्व0 रामनारायण सिंह ‘साधु जी’, तत्कालीन प्रबन्धक हरि आश्रम जू0 हाई-स्कूल बरूइन का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। गोष्ठी का एक मात्र उद्देश्य क्षेत्रीय युवाओं में लिखने, पढ़ने और बोलने के प्रति रुचि पैदा कर उनकी प्रतिभा को विकसित करना था। इस क्रम में, वर्ष में एक कवि सम्मेलन

का भी आयोजन किया जाने लगा, जिससे लखनऊ कानपुर, फैजाबाद, आजमगढ़, धनबाद, जौनपुर, इलाहाबाद, आगरा, पटना, वाराणसी और गाजीपुर के नामचीन रचनाकारों को आमंत्रित किया जाता रहा। यह क्रम वर्ष 1985 तक अनवरत चलता रहा जो बाद में आर्थिक कङ्गिनाइयों के कारण टूट गया। लेकिन विचार गोष्ठियों का क्रम आज भी जारी है। इसी रुझान के फलस्वरूप मेरे अन्दर समस्यामूलक विचार उङ्गते रहे जिन्हें मैं लिपिबद्ध करता रहा, जो आज संग्रह के रूप में आप के सामने है। इस संग्रह में बेबाक बयानी द्वारा मानव निर्मित व्यवस्था पर उँगली उङ्गाई गई है, जिसे हर घर-परिवार, गाँव-समाज में देखा और महसूस किया जा सकता है।

कवि गोष्ठी-कवि सम्मेलन के आयोजन में विशेष रूप से श्री वीरेन्द्र सारंग का योगदान मुझे संबल प्रदान करता था। कवियों को आमंत्रित करने, मंच सजाने, संचालन करने का काम बड़े ही मनोयोग से उन्होंने निभाया। मैं सारंग जी का बहुत आभारी हूँ। गाजीपुर से साइकिल चलाते हुए मात्र एक सूचना पर गोष्ठी में उपस्थित होने वाले श्री अनन्तदेव पाण्डेय ‘अनन्त’ का मैं विशेष आभारी हूँ। मैं आभारी हूँ स्व0 वंशराज सिंह एवं श्री वंशनारायण सिंह ‘मनज’ का जिनकी उपस्थिति गोष्ठी की गरिमा थी। मैं आभारी हूँ श्री हरिनारायण सिंह ‘हरीश’, कुमार शैलेन्द्र, राजकुमार, विनयराय ‘बबुरंग’, मिथिलेश गहमरी, फजीहत, विष्णुदत्त पाण्डेय, जयप्रकाश जिद्दी, कामेश्वर द्विवेदी एवं डा0 अक्षय कुमार पाण्डेय का जिनके सहयोग से गोष्ठी चलती रही। (‘आओ

मेरे गांव में' से)

2

मेरी कविताएं स्वतंत्र चेतना व विचारों का रेखांकन हैं, इनमें आन्तरिक व वाह्य जीवन के साथ-साथ लोकानुभूतियों की सपाटबयानी है। वैसे अपनी परिस्थितियों एवं परिवेश से अलग रहकर वर्तमान समय में सृजन करना असम्भव है। कविता में विचार तत्व एवं भाव तत्व का समन्वय ही उसे कविता बना देता है। कविता केवल मनोरंजन का साधन नहीं, प्रतिरोध-प्रतिकारपूर्ण आत्माभिव्यक्ति का साधन है। जिसका प्रयोग सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक विकृतियों, शोषण, उत्पीडन, विसंगति, विडम्बना, विरूपता और विवशता के विरुद्ध सामाजिक परिवर्तन के लिए किया गया शंखनाद है। अव्यवस्था के विरुद्ध आक्रोश की अभिव्यक्ति है। कविता का दूसरा नाम ही संवेदना है। किसी भी रचना में सम्पूर्ण कथ्य कविता नहीं होता बल्कि जहाँ पर यह संवेदित करता है, वहीं पर कविता होती है।

सृजन स्वयं में एक वरदान है। अगर अनुभूति और पीड़ा का सामंजस्य बैङ्ग जाय तो अभिव्यक्ति के कई आयाम मिल जाते हैं। कविता उसका एक सशक्त माध्यम है। यह एक साधना है। संग्रह की कविताओं में अनुभूति, विचार एवं भावबोध को मात्र शब्द दिया गया है, जिनमें त्रुटियां, विचारों में गंभीरता का न होना स्वाभाविक है, फिर भी जो भी है, जैसा भी है, आप को समर्पित है। ('कीचड़ सने पाँव' से)

3

यों तो कहने को सब कुछ भारतीय वांग्मय, ऋचा, श्लोक, छंद, कविता आदि में कहा जा चुका है फिर भी हर काल खण्ड की अनुभूतियाँ, आस्थाएँ अपने परिवेश के साथ बदलती रहती है, और उसी के अनुरूप कथ्य और कथानक सब कुछ बदलता रहता है। समय और समाज के दायरे में जो बातें मेरे मन को प्रभावित कर सकीं हैं, वही शब्द के रूप में व्यक्त हुई हैं।

यदि कविता दिल की टीस है, कवि के व्यक्तिगत अनुभूति की उपज है तभी वह कविता है। मैं इसी आलोक में इस संग्रह को प्रकाशित करने का साहस कर सका, अन्यथा इस क्रम में मैं संकोची था। इस संग्रह की महत्ता एवं उपयोगिता पाङ्कों, समीक्षकों के बौद्धिक विवेक पर है, मैं तो आपके विचारों और सुझावों का आकांक्षी हूँ।

मेरे इन तिक्त मधुर अनुभवों के ताने-बाने से उपजे छंद और तुकों की लाइनों को सुव्यवस्थित बनाने एवं सजाने में भाई रविनन्दन सिंह के श्रमशील योगदान के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ, जिनके प्रयास के बिना यह प्रकाशन सम्भव नहीं हो पाता।

मैं प्रो0 योगेन्द्र प्रताप सिंह, श्री ओम धीरज जी एवं श्री नन्दल हितैषी जी का विशेष आभारी हूँ जिन्होंने अपना समीक्षात्मक सुझाव देकर मेरा मान बढ़ाया है।

मैं कवि गजलकार स्व0 हरिवंश पाठक 'गुमनाम' जी को अपनी कृतज्ञता एवं विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ, जिनकी चाह थी मेरी रचनाओं के प्रकाशन की। डॉ0 सरजू तिवारी, डॉ0 पी0एन0 सिंह, डॉ0 जितेन्द्र नाथ पाठक, डॉ0 अनिल सिंह, अनन्त देव पाण्डेय 'अनन्त', मनज जी, एवं सौरभ साहित्य परिषद बरुइन, संदर्भ साहित्य परिषद जमानिया, चेतक समिति गाजीपुर तथा अपने शुभेक्षु अग्रजों, मित्रों का बहुत ही आभारी हूँ, जिनका सुझाव, सहयोग और प्रोत्साहन समय-समय पर मिलता रहा है। अंत में मैं अपने अनुज संजय कुमार सिंह को धन्यवाद् दूँगा, जिन्होंने अलग-अलग पन्नों में फैली रचनाओं को समेटने का कार्य किया है। ('बेड़ियों को चोट की दरकार है' से)

4

मेरी कविताएं मन के भावों, विचारों और अनुभूतियों का मात्र प्रक्षेपण हैं। वर्तमान दौर में व्याप्त सामाजिक, राजनैतिक विद्रूपताओं और विसंगतियों, जिनका सामना आज हर संवेदनशील व्यक्ति कर रहा है, उसी का वैचारिक दस्तावेज है मेरी कविता। कविताओं में चाहें कुछ हो या न हो उसमें छिपा संदेश ही महत्वपूर्ण है। व्यक्ति की दृष्टि, उसकी सोच, उसकी अभिव्यक्ति उसके सामाजिक परिवेश और उस काल की आवश्यकताओं की देन होती है, जिसका उचित निदान खोजना और समाज की चेतना को जगाना ही रचनाकार का उद्देश्य होता है।

आज मानवीय संवेदनाओं के पांव उखड़ते जा रहे हैं, परिवार, समाज, सभ्यता, संस्कार और चरित्र आदि शब्द निरर्थक हो गए हैं। अर्थ केन्द्रित विकास की अंधी दौड़ में व्यक्ति सफलता और असफलता के बीच अवसादग्रस्त होकर या नशे का शिकार होकर आत्महत्या को विवश हो रहा है। आज प्रतिज्ञाओं या प्रतिबद्धताओं का दौर खत्म हो गया है फिर भी नैतिकमूल्यों को नकारा नहीं जा सकता।

इन कविताओं में कुछ चुभन भी है पर उसका उद्देश्य किसी को दुख पहुँचाना नहीं बल्कि उचित और सार्थक बनाना है। कवि आह और बुझी हुई आशाओं से ही प्रेरणा लेता है। इस सम्बन्ध में प्रेमचन्द्र ने लिखा है- 'धर्म और ऐश्वर्य, रूप और बल, विद्या और बुद्धि ये विभूतियाँ संसार को चाहे कितना भी मोहित कर ले, कवि के लिए जरा भी आकर्षण नहीं है। उसके आकर्षण की वस्तु तो बुझी हुई आशाएँ, मिटी हुई स्मृतियाँ और टूटे हुए हृदय के आँसू हैं।'

साहित्य उन लोगों को आईना दिखाता है जो ऐसे हालातों के लिए जिम्मेदार है। यथार्थ पाठक के समक्ष है। अच्छा या बुरा, सही या गलत का निर्णय पाठक को करना है। मेरी कविताओं में छंद-मात्रा खोजने वालों को निराश होना पड़ेगा, क्योंकि ये किसी मीटर में नहीं हैं। मैंने इसमें मात्र भाव और अर्थ को ही महत्व दिया है। मेरा मानना है कि भाषा साधन है साध्य नहीं। विषय और शैली मेरी अपनी है। यदि रचनाएँ किसी से मेल खाती है तो यह एक संयोग ही होगा अन्यथा मैं किसी रचनाकार से प्रभावित नहीं हूँ।

मेरी कविताओं का प्रकाशन मेरे शुभेच्छुओं की देन है, जिनके बार-बार के उलाहनों और आग्रहों ने इसे संभव बनाया है। इन्हीं शुभेच्छुओं में डा0 जितेन्द्र नाथ पाङ्क, डा0 सरजू तिवारी, डा0 पी0एन0 सिंह, डा0 वेदप्रकाश पाण्डेय, श्री ओमप्रकाश चौबे 'ओम धीरज', श्री अनन्तदेव पाण्डेय 'अनन्त', डा0 अनिल कुमार सिंह, श्री रामावतार, डा0 गजाधर शर्मा 'गंगेश', श्री वंशनारायण सिंह 'मनज', श्री हरिनारायण 'हरीश', डा0 विमल, श्री वीरेन्द्र सारंग, श्री कुमार शैलेन्द्र, श्री त्रिविक्रम उपाध्याय, श्री हीरालाल उपाध्याय, डा0 मदन गोपाल सिन्हा, डा0 अखिलेश शर्मा शास्त्री, श्री संजीव गुप्त, श्री कामेश्वर द्विवेदी, श्री जनार्दन राय, श्री के0 डी0 सिंह, श्री रामअधीन सिंह, श्री उमाशंकर सिंह, डा0 सुरेशराय एवं राजकुमार के प्रति मैं बहुत आभारी हूँ।

भाई रविनंदन सिंह, काशीनाथ सिंह, संजय कुमार सिंह, पुत्र प्रभाकर सिंह एवं सुधाकर सिंह धन्यवाद के पात्र हैं, जिनका योगदान महत्वपूर्ण रहा है। मैं आभारी हूँ पत्नी श्रीमती सुशीला देवी का, जिनका मौन मुझे लिखने की जगह देता है।

अंत में इस आशा और विश्वास के साथ कि कविता एक निश्चित उद्देश्य में व्यक्ति और समाज का निर्माण करती है, वह मात्र शब्दों का जाल और मनोरंजन नहीं है। ('दुनिया तो है आनी-जानी' से)

शहर समता
शहर समता
शहर समता

बड़े भाई का चंदोवा छत पर होना

रविनंदन सिंह

स्मृतियों का एक पन्ना खुलता है, मेरे बड़े भाई साहब राजेन्द्र सिंह की सबसे पहली स्मृति जो जेहन में उभरती है, वह है उनकी गंभीर प्रकृति। उनसे बात करने में डर लगता था। मेरे से उम्र में 15 साल बड़े थे। जब मेरी उम्र 5 या 6 साल की थी तो मैं उन्हें देखता था कि वे या तो कुछ पढ़ रहे हैं या कुछ लिख रहे हैं। अर्थात उनकी प्रकृति अध्ययनशील थी। मैने उन्हें हमेशा किताबों के बीच ही देखा।मैंने पहली बार राष्टष्ठ्य स्तर की पत्रिकाएं जैसे दिनमान, साप्ताहिक हिंदुस्तान और धर्मयुग को उन्हीं के पास देखा। सच तो यह है कि हमारे पिता की पीढ़ी तक शिक्षा हमारे परिवार से दूर ही थी। मेरे पिताजी फौजी थे किंतु उनके पास कोई डिग्री नहीं थी। बस अखबार पढ़ लेते थे और काम भर का लिख लेते थे। वास्तव में हमारे परिवार में शिक्षा का प्रवेश कराने का श्रेय भाई साहब को जाता है। आज तो हमारे परिवार में अधिकांश स्नातकोत्तर हैं। जबकि कुछ स्नातक हैं।

मुझे याद है कि एक बार चारपाई पर कुछ किताबें और पत्रिकाएं रखकर वे कहीं चले गए थे। मैं उन्हें पलटने लगा। उसमें दो की याद है। एक किताब थी डॉ किशोरीलाल गुप्त की 'तुलसी और और तुलसी' तथा दूसरी थी दिनमान पत्रिका। पत्रिका अभी पलट ही रहा था, तभी वे आ गए और डांटते हुए कहा कि पहले अपनी पढ़ाई करना चाहिए और बाद में यह सब।

जब मैं हरी आश्रम जूनियर हाई स्कूल में कक्षा 6 का छात्र था तो भाई साहब ही वहां प्रधानाध्यापक थे। मैंने देखा कि वे प्रधानाध्यापक के रूप में अपने दायित्वों के प्रति बहुत सजग रहते थे। विद्यार्थीगण उन्हें देखते ही सजग और सावधान हो जाते थे।

उन्हीं दिनों कक्षाओं में उनके अध्यापन से पहली बार परिचय हुआ। वे हिंदी पढ़ाते थे। हिंदी के कवियों को पढ़ाते हुए उनकी इतनी अच्छी व्याख्या करते थे कि हम विद्यार्थीगण सम्मोहित हो जाते थे। वही पहला अवसर था कि मेरे मन में साहित्यिक संस्कार उभरने लगे। कबीर, सूर, तुलसी, मीरा, रसखान आदि कवियों की कविताएं उन्हें पूरी तरह कंठस्थ। जब वे उन कविताओं को पढ़ाते थे तो ऐसा लगता था कि साक्षात वह कवि सामने आकर उपस्थित हो गए हों। मेरे साहित्य स्वभाव को निर्मित करने में भाई साहब का विशेष योगदान है। जब विद्यालय के किसी समारोह में या अन्य अवसर पर वो भाषण देते तो उसकी बहुत प्रशंसा होती। आज भी उनका आजपूर्ण वक्तृत्व सामने वाले श्रोताओं को वशीभूत कर लेता है।

जूनियर हाई स्कूल में जब भाई साहब प्रधानाध्यापक थे, उन दिनों की एक स्मृति मैं साझा करना चाहता हूं। उनके मार्गदर्शन एवं विद्यालय के अन्य अध्यापकों का यह कमाल था कि हमारे विद्यालय के तीन छात्र कक्षा 8 की परीक्षा में जिले में 'अंडर टेन' श्रेणी में आए थे। उसमें मेरा स्थान दूसरा, हमारे सहपाठी प्रमोद सिंह पांचवां और महेंद्र सिंह का सातवां स्थान था।

मैंने यह पाया कि भाई साहब बहुत स्वाभिमानी हैं और उनके लिए आत्मसम्मान से बढ़कर कुछ भी नहीं है।चाहे वह पद हो, प्रतिष्ठा हो अथवा धन-संपत्ति हो। उनके लिए सबसे बड़ी चीज है उनका स्वाभिमान और आत्मसम्मान। उनका ज़मीर हमेशा उन्नत होता है। जब मैं कक्षा आठ का विद्यार्थी था और वे प्रधानाध्यापक थे, मुझे याद है कि उन दिनों प्रबंधन से उनका कुछ तनाव चल रहा था। उनके ऊपर प्रबंधन का कुछ अनुचित दबाव था। कुछ शायद कुछ वित्तीय अनियमितता करने के लिए दबाव आ रहा था, जिसमें भाई साहब की हस्ताक्षर की भी जरूरत थी। उन्होंने स्पष्ट मना कर दिया था। वे किसी तरह की अनियमितता में शामिल नहीं हो सकते थे। प्रबंधक और प्रधानाध्यापक के बीच में क्रमशः तनाव बढ़ता गया और तनाव इतना बढ़ गया कि अंत में भाई साहब ने झुकने या स्वयं को गिरवी रखने की बजाय प्रधानाध्यापक के पद से त्यागपत्र देना उचित समझा। उन्होंने अपनी नियमित नौकरी या वेतन की परवाह नहीं की, तुरंत पद से त्यागपत्र दे दिया।

धन और आत्मसम्मान के बीच उन्होंने आत्मसम्मान का पक्ष चुना और धन की ताकत को तिनके की तरह ठुकरा दिया। कोई और होता तो समझौता कर लेता। यह स्वभाव कदाचित मैंने भी अपने अंदर महसूस किया है। एक अवसर ऐसा भी आया कि मैंने भी नियमित राजपत्रित सेवा से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति ले ली।

अवांछित समझौता करना भाई साहब का स्वभाव नहीं था। जहां भी रहे इमानदारी से रहे। बाद में उन्हें बिहार के एक हाई स्कूल में प्राध्यापक की नौकरी मिल गई, जिसे अंत तक उन्होंने ईमानदारी और सत्यनिष्ठा के साथ निर्वाह किया। वहां से 2011 में बेदाग छवि के साथ सेवानिवृत्त हुए। कबीर की तरह जस की तस धारी दीनी चदरिया।

भाई साहब का जीवन बहुत प्रेरणादाई है। उन्होंने

जीवन को अपने स्व तक सीमित नहीं रखा। हमेशा समाज के बारे में सोचते रहे आज भी वही सोचते हैं। इसीलिए

उन्होंने जमानिया जैसे पिछड़े क्षेत्र में साहित्य की अलख

जगाने के लिए, 1977 के आसपास एक संस्था 'सौरभ साहित्य परिषद' की स्थापना की। भाई साहब 'सौरभ साहित्य परिषद' के माध्यम से अक्सर कवि गोष्ठियों का आयोजन करते थे जिसमें पूर्वांचल ही नहीं, बाहर से भी अनेक प्रख्यात कविगण भाग लिया करते थे। मुझे याद है जूनियर हाई स्कूल में इन्हीं कवि गोष्ठियों में मैंने, कालांतर में प्रख्यात होने वाले अनेक कवियों को पहली

बार सुना।

उनमें कैलाश गौतम और बुद्धिनाथ मिश्र जैसे कवियों को सुनने का पहला अवसर मुझे वही मिला। संस्था के द्वारा कवि सम्मेलनों का वह सिलसिला आज भी बदस्तूर जारी है।

सौरभ साहित्य परिषद के माध्यम से वे क्षेत्र के विशिष्ट कार्य करने वाले ल ोगों को सम्मानित भी करते हैं। वह विशिष्ट कार्य किसी भी क्षेत्र का हो सकता है। चाहे समाज सेवा का हो, प्रशासन का हो अथवा अन्य किसी क्षेत्र का हो? विशिष्ट कार्य करने वाले लोगों का सम्मान करना, उसके लिए धन एकत्र करना, सम्मान समारोह का आयोजन करना और उसके माध्यम से नवयुवकों को प्रेरित करना यह वे अपना दायित्व मानते हैं। यह कार्य सतत रूप से चलता जा रहा है।

भाई साहब ने पूरे क्षेत्र में मद्यनिषेध के लिए एक बड़ा आंदोलन चलाया था। उनका उद्देश्य था कि नवयुवक

इस व्यसन से दूर रहें और सकारात्मक कार्यों के माध्यम से जीवन और समाज के लिए अपना योगदान दें। जीवन वे मानते हैं कि जीवन समाज के लिए समर्पित होना चाहिए,न कि स्वयं अपने लिए। भाई साहब का यह मिशन भाव आज भी जारी।

मैं जीवन में आज जो कुछ भी हूं, उसमें जन्म देने वाले माता-पिता के साथ-साथ दो लोगों का विशेष योगदान है, एक मेरे बड़े पिता श्री दशरथ सिंह का तथा दूसरे बड़े भाई श्री राजेंद्र सिंह का। जहां बड़े पिता स्वर्गीय दशरथ सिंह ने मुझे धार्मिक-आध्यात्मिक संस्कार दिए तथा अच्छा मनुष्य होने का मार्ग बताया तो बड़े भाई श्री राजेंद्र सिंह से मैने साहित्यिक संस्कार आत्मसात किया। उन्हीं साहित्यिक संस्कारों को लेकर मैं आगे बढ़ा और आज जो कुछ भी लिखता पड़ता हूं, उसकी शुरुआत जूनियर हाई स्कूल के दिनों में हुई, जिसके ऊपर मेरे बड़े भाई श्री राजेंद्र सिंह का ही वरदहस्त रहा।

वरिष्ठ साहित्यकार

जमीन के खुरदुरेपन का एहसास करातीं कविताएँ

डॉ. पी एन सिंह

कवि को चिंता है कि देश कैसे बनेगा। उसे मालूम है कि बिना क्रांति के देश नहीं बनता। आज देश जाति और सम्प्रदाय में बँटा हुआ है। समाज में राष्टष्ठीय एकता कैसे आयेगी?

श्री राजेन्द्र सिंह देखने में जितने गृहस्थ हैं, चिंतन और लेखन में उतने ही तीव्र और कुशल। किसी भी विषय पर बात कीजिए, उनका एक छोटा-बड़ा लेख दो-तीन दिनों के अंदर ही तैयार मिलेगा। लेख ही नहीं, आप कविता भी लिखते हैं। इनके छोटे भाई रविनंदन सिंह बहुत ही अच्छे कवि और लेखक हैं, जो मूलतः कवि हैं और उनका कवि ही उनके गद्य को संस्कारित करता है।

राजेन्द्र जी भी लगभग इसी स्थिति में हैं। ये शुद्ध किसान जैसे दिखते हैं और सामान्यतया किसानी की बातचीत भी करते हैं, लेकिन साहित्य, समाज अथवा राजनीति पर तुरंत निबंध लिख देते हैं। ये भी कवि हैं और इनका एक काव्य-संकलन 'बेड़ियों को चोट की दरकार है' 2014 में प्रकाशित हुआ। एक और काव्य-संकलन 'दुनिया तो है आनी-जानी' प्रकाशनाधीन है। तीसरा काव्य संकलन 'आओं मेरे गाँव में' प्रकाशित होने वाला है जिसकी भूमिका लिखने की जिम्मेदारी मेरे ऊपर आ पड़ी है। राजेन्द्र जी मूलतः कवि हैं जिनकी कविताएँ जमीन के खुरदुरेपन का एहसास कराती हैं।

श्री राजेन्द्र सिंह अपने काव्य-संकलन में यह दिखाते हैं कि आज का गाँव कितना असंतुलित, कितना परंपराओं में जड़ित और कितना पराजित है। वैसे तो आज का प्रत्येक कवि अपने को पराजित महसूस करता है और अपने पराजय की ही कथा अपनी कविताओं में कहता हैं, लेकिन राजेन्द्र जी थोड़े भिन्न हैं और वह अक्सर अपनी कविता को अपने पसीने से तर किये रहते हैं जैसा कि हर प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति करता है। काव्य-सृजन इनका व्यक्तिगत सरोकार है। यह विचित्र-सा लगता है कि एक ऐसा कवि जिसका तीसरा काव्य-संकलन प्रकाशित हो रहा हो, लेकिन उसे कविता-पाङ्ग करते हुए शायद ही किसी ने देखा-सुना हो। श्री राजेन्द्र सिंह धान की मेढ़ पर खड़े रहकर भी

कविता बनाते हैं। इनके साथ परेशानी यह है कि ये स्वतः अपनी कविताओं को छपवाने के चक्कर में नहीं पड़ते। इनकी स्थिति 'म्यूट इनग्लोरियस मिल्टन' की है जो चुपचाप अपनी प्रतिभा को छिपाता रहता है। अगर छोटा भाई न होता तो शायद राजेन्द्र जी अपनी सारी काव्य- प्रतिभा के बाद भी कवि के रूप में अनजाने रह गये होते। लेकिन अब ये अनजान नहीं हैं। अपने तीसरे संकलन तक आते-आते राजेन्द्र सिंह जी अपने क्षेत्र की एक जानी-मानी साहित्यिक निधि हैं।

इनके इस तीसरे संकलन आओ मेरे गाँव में कुल 52 कविताएँ हैं जो किसी- न-किसी रूप में गाँव के इर्द-गिर्द की समस्याओं को समेटे, इसी की भावभूमि में रची-बसी है। इनकी एक रचना है 'उनके लिए रचो' जो रचनाकारों से उम्मीद करता है-'मसनद की बातें अब छोड़ो /सोफा और दीवान गुदड़ी में पेवंद गांथते/ उनके लिए रचो।' इतना ही नहीं, कवि आगे कहता है- 'रचना है तो रचो देश को/ शोषण-मुक्त करो जो जीवन से जूझ रहे हैं/ उनके लिए
रचो।'

इन कविताओं से कवि का आशय स्पष्ट है। कवि जीवन के दुरूह क्षणों को देखता और आत्मसात करता है तथा उसे अपनी कविताओं का आधारभूत विषय बनाता है। इस दृष्टि से संकलन की पहली ही कविता 'सरकारी हूँ मैं' कवि भास्त की लोकतांत्रिक सरकारों में पल रहे भ्रष्टाटार से मुखातिब होता है और बेईमान मस्ती की बात करता है-

'सबके अधिकारों का
अधिकारी हूँ मैं
मुझसे डरो
अदब करो, देखो विधान हूँ मैं
सबका निदान हूँ मैं
कर्म का अधिकार तुम्हारा फल देना मेरा हैं।'

कवि को चिंता है कि देश कैसे बनेगा। उसे
मालूम है कि बिना क्रांति के देश नहीं बनता। आज देश जाति और सम्प्रदाय में बँटा हुआ है। समाज में राष्टष्ठेय एकता कैसे आयेगी? यही स्थिति थी जो जयप्रकाश नारायण की 'संपूर्ण क्रांति' का नारा बनी थी। लेकिन क्या हुआ उस क्रांति का ? कवि के अनुसार वह 'संपूर्ण क्रांति' भी स्वार्थ के दलदल में फँसकर दिग्भ्रमित हो गयी और देश की जनता अपने को छली-सी महसूस करने लगी-

'दिग्भ्रमित कर गई
स्वार्थ के दलदल में फँस
नये सिरे से जनता को छल गई।'

इसके माने यह कि जनता ऐसे ही व्याख्याहीन संपूर्णता के चक्कर में पड़कर सत्ता के कीचड़ में फँसती रहेगी। मनुष्य आज निर्विकल्प है। लेकिन कवि को अपनी एक कविता 'प्रिय लगती है' में विद्यालय की

घंटियाँ, नदी की कल-कल, पक्षियों का कलरव और पर्वत की द्रवित चोटियाँ सब कुछ आत्मानुशासित लगती हैं।

कवि को चिकनी-चुपड़ी नहीं, बल्कि स्वाधीनता,स्वाभिमान और घास की रोटियाँ अच्छी लगती हैं। इसलिए ही कवि अपनी एक छोटी-सी कविता 'रक्त बीज' में किनारे की राख को हटाकर फूँक लगाने की बात करता है। इस कविता में कवि गोबर और धनिया की विशेष चिंता करता है, लेकिन उसकी चिंता होरी की भी है जिसके रक्तबीज से ही गोबर जन्म लेगा-

'धनिया के आँगन का गोबर
गुलाम न होने पाये
होरी का हर रक्त-बीज
बारूद बनाना होगा।'

यहाँ इन पंक्तियों को समझने में दिक्कत महसूस होती है। कवि का मानना है कि होरी का रक्त-बीज ही बारूद बनता है। धनिया और गोबर को अगर बनाना है तो होरी के बिना संभव नहीं है। लेकिन प्रेमचंद्र का होरी क्रांति-चेता नहीं हैं। अगर उम्मीद दिखती है तो धनिया की तीक्ष्णता और गोबर के विद्रोही स्वभाव में। लेकिन कुल के बावजूद, यह कविता 'रक्त बीज' बेहद सुंदर और सटीक है। यह छोटी-सी कविता मुझे इस संकलन की 52 कविताओं में सर्वोत्तम प्रतीत होती है।

इसी तरह एक कविता 'इच्छा लोभ' है, जो
लोभ में पड़े लोगों की कथनी और करनी में अंतर को स्पष्ट करती है। कवि के अनुसार यह अंतर ही मनुष्य की असफलता का कारण है। संकलन की कविता है 'किस पर कितना रोऊँ', जिससे कवि सड़क, रेल, बिजली, शिक्षा, भूख, प्यास के संदर्भ में ल ोकतांत्रिक समाजों की असफलताओं की चर्चा करता है। यहाँ चर्चा नयी पुरानी पीढ़ी के बीच है जो गाँव और नगर में आयी दूरी को भी रेखाकित करती है। यह ऐसा समय है जब देवालय, मदिरालय और शिक्षालय सबके उपयोग हैं। यह एक ऐसा समाज बना है जिससें साहित्य केवल विरूदावली गाता है। इस तरह समाज की सारी मूल्यपरक चीजें मानों ध्वस्त हो गयी हों। आज घुरहू अपनी साँप-छछूंदर की स्थिति में पड़ा है। कवि की समझ में नहीं आता कि कालिख को किस तरह धोये। इसके माने यह कि समूची व्यवस्था ही मानों चूर-चूर हो गई हो।

कवि का यह संकलन 'आओं मेरे गाँव में' विभिन्न स्थितियों से गुजरता है। कवि यह महसूस करता है कि आज के वातावरण में जिंदगी पामाल है। इससें कुछ ऐसी भी कविताएँ हैं जो मनुष्य के जीवन को स्वस्थ और सुंदर बनाना चाहती हैं, ल ेकिन मानव जीवन अपनी तमाम
लम्बी-चौड़ी घोषणाओं के बावजूद छिन्न-भिन्न है। अगर कवि एक कविता में दो कदम आगे बढ़ता है तो दूसरे कविता में दो कदम पीछे हटता-सा मालूम पड़ता है। इसके माने यह कि आज की स्थिति में कवि द्वंद्वग्रस्त है और यह द्वंद्वग्रस्तता ही जीवन का केन्द्र ल गती है। इस स्थिति को कवि ने ड्डीक से अपनी कविताओं में उतारा है। इस तरह यह

शहर समता

संकलन आज की स्थितिगत विडंबनाओं को रेखांकित करता हुआ समाधान के रूप में सामाजिक क्रांति की ओर संकेत करता है जो, अपनी तमाम असफलताओं के बावजूद, अभी कवि मन पर दबाव बनाए हुए हैं।

सुप्रसिद्ध चिन्तक एवं समालोचक

शहर समता
शहर समता
शहर समता

राजेन्द्र सिंह का संवेदनात्मक सृजन बोध

कामेश्वर द्विवेदी

कामेश्वर द्विवेदी, राजेंद्र सिंह, प्रो. श्रीनिवास सिंह

सम्प्रति बहुसंख्यक साहित्य सर्जक हिन्दी साहित्य का भण्डार भरने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील हैं। हिन्दी-साहित्य में अपना अमूल्य योगदान करने वालों में राजेन्द्र सिंह का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ये गाजीपुर जनपद के उन विशिष्ट साहित्यकारों के बीच परिगणित होते हैं जिन्होंने अपने कृतित्व से वर्तमान हिन्दी-साहित्य के भण्डार को समृद्ध किया है। राजेन्द्र सिंह एक अच्छे कवि, निबन्धकार एवं समीक्षक के रूप में जाने जाते हैं। इनके काव्य संग्रह तो प्रकाशित हैं, परन्तु निबंध व समीक्षाएं अभी प्रकाशित नहीं हैं।

यह निर्विवाद सत्य है कि किसी भी रचनाकार का साहित्य उसके व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप अपने में समाये रहता है। अतएव रचनाकार के साहित्य का मूल्यांकन करने से पूर्व उसका जीवन-परिचय जानना भी आवश्यक है। हिन्दी-साहित्य सृजन में निरन्तर प्रयत्नशील राजेन्द्र सिंह का जन्म एक जुलाई सन् उन्नीस सौ इक्यावन में उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जनपदान्तर्गत बरुइन नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता श्री देवनाथ सिंह एक मध्यमवर्गी सम्पन्न किसान थे । इनकी जन्मदात्री माँ मोतीझारी असमय ही इनके शैशवकाल में काल-कवलित हो गयीं, पालनकर्त्री माँ ऊगा देवी जो बड़ी माँ थीं, प्यार दुलार से सींचकर इन्हें उच्चतम श्रृंग पर सुशोभित कीं। राजेन्द्र सिंह ने स्नातक करने के बाद शिक्षा-स्नातक में सफलता हासिल किया। तदुपरान्त ग्राम के ही प्रबन्ध समिति द्वारा संचालित विद्यालय में प्रधानाध्यापक पद पर नियुक्त हुए और विद्यालय को उच्चता प्रदान किया। आप अनन्य कर्मज्ञ, कर्तव्यनिष्ठ, अनुशासनप्रिय एवं स्वाभिमानी व्यक्तित्व के लिए बहुचर्चित रहे हैं। इनके पढ़ाने की शैली, मृदुता, सहजता, सरलता एवं वाग्मिता का लोग लोहा मानते थे। कुछ समय तक यहाँ सेवा के पश्चात् बिहार प्रान्त के हाई स्कूल में

अध्यापक पद पर चयनित हुए और प्रधानाचार्य पद से सम्प्रति सेवामुक्त हैं। शिक्षक के रूप में इन्होंने कीर्तिमान स्थापित किया। अब अपना अधिक समय साहित्य-साधना में बिताते हैं। चूँकि किसान-पुत्र हैं, इसलिए कृषक के रूप में भी अपने कृषि-कार्य का बखूबी निर्वहन करते हैं। इनके लेखों और समीक्षाओं की पाण्डुलिपियों को मैंने देखा और पढ़ा है, जो समाज के लिए अनमोल रत्नतुल्य हैं, परन्तु प्रकाशन के मामले में ल ापरवाह हैं, इनके जो काव्य संग्रह प्रकाशित हैं, वह इनके अनुज हिंदुस्तानी एकेडेमी के भूतपूर्व कार्यकारी सचिव श्री रविनंदन सिंह की देन है जो सम्प्रति प्रयागराज में रहते हैं। यदि वे प्रकाशित न कराते तो शायद काव्य कृतियाँ पाण्डलिपि के रूप में ही आल मारी की शोभा बढातीं। वैसे इनकी रचनाएँ 'जमदग्नि वीथिका', 'चक्रमण', 'समकाल ीन सोच', 'मित्रः, 'उजास', 'हिंदुस्तानी' एवं 'भोजपुरी माटी' जैसी लब्धप्रतिष्ठ पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं।

राजेन्द्र सिंह असाधारण काव्य प्रतिभा सम्पन्न साहित्य-साधक हैं। गम्भीर चिंतक एवं अध्यवसायी हैं। वे जितने सहृदय एवं आत्मीय हैं उतने ही मूल्यों के प्रति बेहद सजग। किसी विषय पर अपना विचार सतर्क एवं सुस्पष्ट रूप से प्रस्तुत करते हैं। आत्मबल और आत्मविश्वास से भरपूर रहते हैं। निर्भीकता एवं स्वाभिमानिता इनमें कूट-कूटकर भरा है। यही तेवर इनकी कविता, निबन्ध एवं समीक्षा में भी देखने को मिलता है।

राजेन्द्र सिंह की चार काव्यकृतियाँ अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं। प्रथम 'बेड़ियों को चोट की दरकार है' 2014 में प्रकाशित। द्वितीय- दुनिया तो है आनी जानी' एवं तृतीय - 'आओ मेरे गाँव में' 2015 में प्रकाशित हैं। चतुर्थ 'कीचड़ सने पाँव' 2023 में प्रकाशित है। प्रथम संग्रह
'बेड़ियों को चोट की दरकार है' में कवि ने जीवन के अन्तर्विरोधों एवं सामाजिक विसंगतियों को अभिव्यक्त किया है। यहाँ मानवीय मूल्यों एवं संस्कारों के विलुप्त होने की पीड़ा उभरकर आई है। मुक्तक के रूप में यह ग्रन्थ उसी भाँति है जैसे गहन अन्धकार में आलोक की रेखा। जीवन की सच्चाइयों को कवि ने बड़े ही अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया है। स्वावलंबन का मानव के लिए क्या महत्त्व है, देखें-- गिरते हैं वहीं जो चलने से डरते हैं/ परिन्दों की हस्ती देख जो व्योम में विचरते हैं/ सहारे पर सदा जिन्दगी जीने वालों/
खड़े होते हैं वो जो खुद के पाँवों पर सम्हलते हैं। आज की सामाजिक स्थिति के यथार्थ को कवि ने यों दर्शाया है--
जैसी चाहो लूट यहाँ है/ मनमाने की छूट यहाँ है/ 'जनता' कहना व्यर्थ शब्द है/ एक-एक में फूट यहाँ है।

कवि राष्टष्ठेयता की भावना को विखण्डित होने से बचाने के लिए आकुल है, यदि उन्नति के श्रृंग को स्पर्श करना है तो हर एक नागरिक का पुनीत कर्तव्य है कि जाति, धर्म, भाषा इत्यादि के भेद को समाप्त करे। यथा--
गगन चूमने से पहले आधार बनाना होगा/ भेद-भाव की हर पुख्ता दीवार गिराना होगा/

जाति, धर्म, भाषा के मद में हर नागरिक गुम है/ उस कलंक की काली छाया आज मिटाना होगा । कितनी पीडा है कवि के मन में,
कहता है--अब तो केवल जातिवाद है स्वार्थवाद है भोगवाद है/ त्याग तपस्या प्रेम किताबी/ मानवता अब व्यर्थवाद है। नौकरशाही की शुचिता पर कवि को सन्देह है, और यह सन्देह निराधार नहीं है। जो देश के कर्णधार हैं वही देश को गर्त में ले जाने में तनिक भी नहीं हिचकते । निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-- 'लिये चुनौती देश खड़ा है यह पूरा परिवेश खड़ा है/ नौकरशाह मिले नेता से, एक भ्रष्ट अवशेष खड़ा है।'

कवि ने पुस्तक के अंत में कतिपय भोजपुरी मुक्तकों को भी स्थान दिया है। इन भोजपुरी मुक्तकों में भी वही कसाव और वही शिल्प है जो हिन्दी के मुक्तकों में है। एक उदाहारण पर्याप्त होगा--'मन क भूल ह हटा देहीं/ स्वार्थ क भावना मिटा देहीं/ ई हमार प्रांत, घर ह, आँगन ह/ एके देश क रंग में मिला देहीं।'

'दुनिया तो है आनी जानी' कृति में सन् 1975 से लेकर 2012 तक की लिखी हुई कविताओं का संकलन है। वर्तमान में हर क्षेत्र में विद्रूपताएँ देखने को मिलती हैं। चाहे राजनैतिक हो, सामाजिक हो, चाहे धार्मिक हो । कविताओं के माध्यम से कवि का समाज को जो संदेश है, काफी महत्वपूर्ण है। मानवीय संवेदनाओं का जो क्षरण हो रहा है, शोचनीय है। संस्कार एवं आचरण केवल पुस्तकों में ही लिखित रह गये हैं, किसी के वास्तविक जीवन से समाप्तप्राय हैं। कवि की दृष्टि में-- 'जानवर को राह पर चलना सिखा, खुद न चलना सीख पाया आदमी / काटकर पत्थर बनाया सर्वशिव, आदमी खुद बन न पाया आदमी ।'

देश अंग्रेजों का कुछ काल तक गुलाम रहा है, यह दुखद है, परन्तु आज जो नेतृत्व करते हैं, देश को चलाते हैं वे अंग्रेजों से अच्छे हैं, यह हमारे सम्मुख प्रश्नवाचक चिह्न है। इस संबंध में कवि का कथन है-- 'अंग्रेजों को गाली देते उनसे ये सब गन्दे हैं/ टके सेर तो वे थे लेकिन, उनसे भी ये मन्दे हैं/ वे विदेश के रहने वाले, ये अपने ही देशी हैं / देव समझ लो भले इन्हें, पर बहरे हैं सब अंधे हैं / लूट रहे माता की अस्मत, खोटे इनके धन्धे हैं।' यह मधुमय देश, जसिकी प्रशंसा में देवता लोग गीत गाते हैं। आज विषमय-सा हो गया है। कवि की दृष्टि में--'लगता है यह देश परिन्दों की बस्ती है / कहें किसे कब जहर कहाँ से इसमें घोल गया है।'
हर तरफ नफरत, द्वेष, घृणा, ईर्ष्या का बोलबाला
है। कवि का हृदय विक्षुब्ध है, यथार्थ का बोध कराता हुआ आदर्श की और संकेत करता है---'नफरत की दीवार खड़ी है, इस्तहार है प्रेम /खण्डित चेहरे उभर रहे हैं, अलग-अलग हैं फ्रेम।' कवि 'अपनी बात' शीर्षक में स्पष्ट करता है- 'वर्तमान दौर में व्याप्त सामाजिक, राजनैतिक विद्रूपताओं और विसंगतियों, जिनका सामना आज हर संवेदनशील व्यक्ति कर रहा है, उसीका वैचारिक दस्तावेज है मेरी कविता'

'आओ मेरे गाँव में' कवि की तीसरी कृति है, इसमें बावन कविताएं संग्रहीत है। कवि ने -सामाजिक विसंगतियों को जैसा देखा यथार्थ रूप में चित्रित किया है। कवि इसको स्वीकार करते हुए कहता है -'मेरी कविता समय और परिस्थिति की मात्र उपज

है, जिसे शब्दों में रख दिया गया है। इस कविता संग्रह में गांव कितना विकृत हुआ है और कितना संस्कारित , कवि ने बखूबी चित्रण किया है। आओ मेरे गाँव में' शीर्षक कविता कितनी सामयिक व यथार्थ है- 'मनरेगा की लूट मची है / आओ मेरे गाँव में / मृतक और जिन्दा दोनों लगे हुए निर्माण में / नाम दर्ज है फर्ज नहीं है / बैङ्क माल उड़ाते हैं / जो समर्थ हैं बहती इस पावन गंगा में / तन मन पवित्र कर जाते हैं।'

इस प्रकार कवि को अपनी धरती का विघटित रूप दिखाई देता है। निःशंक चलने में भय है, निष्कपट, निष्कलंक वाणी, जीवन का मधुर संदेश, सद्भावनाओं और आस्थाओं का सर्वत्र क्षरण स्पष्ट दिखाई दे रहा है--- 'गंध माटी की / प्यार की थाती / अपनी वह धरती / दिखाई नहीं पड़ती।'

कवि समस्त व्यवस्थाओं के विकृत होने की असीम पीड़ा से असहज हो जाता है, और अपनी इस पीड़ा को कविता के माध्यम से हूबहू चित्रण कर अपने को हल्का अनुभव करता है। सार्त्र के शब्दों में - 'एक आदमी पीड़ा में चीखता है और दूसरा पीडा में गाता है। यह जो पीड़ा में गाता है वही रचनाकार है।'

'कीचड़ सने पौव' राजेन्द्र सिंह का चतुर्थ कविता संग्रह है। इसके पहले तीन काव्य संग्रह 'बेड़ियों को चोट की दरकार है' तथा 'दुनिया तो है आनी जानी' एवं 'आओ मेरे गाँव में' प्रकाशित हो चुके हैं। इस कविता संग्रह 'कीचड़ सने पाँव' में कवि ने खोखली मान्यताओं मिथ्या मर्यादाओं एवं झूङ्के आदर्शों के सामाजिक कोढ़ को बड़े ही खूबसूरती से चित्रित किया है।

तुम्हारे प्रगति की भाषा गले की फांस लगती है
भले ही घूमता चक्का मगर बुनियाद हिलती है
कहीं आहत कहीं घायल प्रकृति का जर्रा-जर्रा है
जहाँ पर देश का बचपन कुपोषित भूखों होता है।

कवि राजेंद्र सिंह गंभीर चिन्तक एवं अध्यवसायी हैं। मूल्यों के प्रति बेहद सजग हैं निर्भीकता एवं स्वाभिमानता उनमे कूट-कूट कर भरा है। यही तेवर इनकी कविता में देखने को मिलता है-'बहुत हो चुकीं मन बातें जन की बात करो/ संविधान है लोकतंत्र का जन संवाद करो/ बहुत हुई कुर्सी की बातें जनहित में कुछ काम करो/ राजधर्म निर्वाह करो।' श्री राजेंद्र सिंह को सामाजिक विद्रूपताएँ अंदर तक उद्वेलित करती हैं। वे चाहते हैं कि समाज का रूप स्वच्छ हो। कवि विवश है कहता है-

घुप्प अँधेरे को भला उजाला कैसे कह दूँ
बिगड़े हालात को उज्ज्वल सितारा कह दूँ
होगा कोई और इस हालात की तारीफ़ करे
मेरे यह वश में नहीं श्वेत को काला कह दूँ।

राजेंद्र सिंह जी ने पूरे संग्रह में इस प्रकार की सामाजिक व राजनैतिक विद्रूताओं पर करारी चोट की है। कवि की प्रतिभा इन मुक्तकों में दिखाई देती है। मुक्तक रचना में श्री राजेंद्र सिंह जी सिद्धहस्त है। आपकी भाषा भी परिमार्जित और प्रौढ़ है, सरल एवं ओजस्वी है। राजेंद्र सिंह जी काफी अरसे से साहित्य की सेवा

करते आ रहे हैं। आपकी चतुर्थ कृति 'कीचड़ सने पाँव' मेरा विश्वास है कि साहित्य की सर्वोत्तम निधि है। कविता यों ही सृजित नहीं होती, कविता तो मनुष्य के चेतना की अतल गहराइयों में होने वाले तीव्र उद्वेलनो से पैदा होती है। पूर्व की कृतियों की भाँति यह कृति भी समय की सच्चाइयों को अभिव्यक्त करती है।

मुझे विश्वास है कि ऐसी ही अनमोल कृतियाँ भविष्य में आती रहेंगी। कविता यों ही सृजित नहीं होती, कविता तो मनुष्य के चेतना की अतल गहराइयों में होने वाले तीव्र उद्वेलनों से पैदा होती है। यह कवि के सृजन में स्पष्ट है। समय की सच्चाइयों को अभिव्यक्त करती हुई चारों कृतियों की कविताएँ प्रशंसनीय हैं। समस्त विसंगतियों को कवि ने अपनी कविताओं में बहुत ही प्रभावी ढंग से सजाया है। इन कविताओं के लिए कवि राजेन्द्र सिंह को कोटिशः साधुवाद। साहित्य जगत् इनसे बहुत आशान्वित है। परमात्मा उन्हें शतायुष्य प्रदान करें ।

वरिष्ठ साहित्यकार, गाजीपुर

शहर समता

व्यापक जीवनानुभव का काव्य

प्रो. रामकिशोर शर्मा

'दुनिया तो है आनी जानी' राजेन्द्र सिंह का तीसरा कविता संग्रह है। इसके पूर्व उनके दो काव्य संग्रह 'बेड़ियों को चोट की दरकार है' तथा 'आओं मेरे गाँव में' प्रकाशित हो चुके हैं। प्रस्तुत कविता संग्रह में कुल अङ्गहत्तर कविताएं संकलित हैं। कवि ने अपने व्यापक जीवनानुभव से अनेक विषयों को कविता की कसौटी पर कसा है। ये कविताएं कवि की संवेदनात्मक प्रतिभा को रेखाकित करती हैं। कवि की संवेदना जब नारी के मर्म को स्पर्श करती है तब ये पक्तियाँ सृजित होती हैं-

आँसुओं में पल रही हर भावना
बन गयी हर चाह केवल याचना
झ्रोकरें हर पल यहाँ हैं, झ्रोकरें
है तरसती आज भी हर कामना।

जब कवि आज के आदमी की शिनाख्त करता है तो उसे मानवता का कृष्णपक्ष दिखाई देता है। वह देखता है कि मनुष्यता गुनाहों की घिनौनी राह पर चल पड़ी है। आदमी इंसानियत की राह भूल चुका है। उसने पत्थरों को काटकर देव मूर्तियाँ तो गढ़ लीं, किन्तु खुद आदमी नहीं बन सका। सभ्यता के उच्चीकृत प्रतिमानों को विकसित करने वाला आदमी आज फूल से ज्यादा काँटे पैदा कर रहा है। कवि कहता है कि-

आज का है आदमी क्या आदमी ?

हम भला किसको पुकारें आदमी ?
क्यों गुनाहों की घिनौनी राह पर
मील का पत्थर बना है आदमी।

सबसे कठ्ठिन है खुद को साध लेना। आदमी दुनिया को जीत सकता है। आदमी नदी को बाँध सकता है। आदमी पहाड़ को काट सकता है। बाहर की हर चीज को अपनी मुठ्ठी में कैद कर सकता है। मस्जिद के कगूरे पर बैठ्ठे कौवे को भी मुगालता हो सकता है कि वही मौलवी है। छिपकली को भी अहंकार हो सकता है कि वही छत को संभाले है। हारिल पक्षी को दंभ हो सकता है कि वह न संभाले तो असमान गिर पड़ेगा। आदमी भी इसी तरह के दंभ का शिकार हो जाता है। कवि इसी तरफ संकेत करता है-

स्वयं को ही बाँध पाना है कठ्ठिन
दंभ यह कि दूसरों को बाँध लूँगा
साधना की खुद नहीं शुरूआत अब तक
अहं यह कि सृष्टि को भी साध लूँगा।

अध से इति तक की यात्रा में सृष्टि का अनवरत विकास होता रहता है। इस विकास यात्रा में उत्थान-पतन, जीवन-मरण के क्रम आते रहते हैं। घटनाओं-दुर्घटनाओं, धूप-छाँव, सुख-दुख के सोपानों से गुजरती दुनिया एक दरिया की तरह बहती रहती है। यह दरिया सतत् प्रवाहित होती है। सभ्यताओं के उत्थान-पतन के बावजूद सृष्टि रूपी नदी कभी किसी के लिए कही रुकती। फिराक साहब कहते हैं कि 'यह दुनिया है हमेशा चलती रहती है/ किसी के आने जाने से यहाँ कुछ कम नहीं होता।' इसी तरफ इस संकलन के कवि का भी इशारा है कि-

किसके लिए रुका है दरिया
किसके लिए रुका है पानी
दुनिया तो है आनी जानी
किसका गौरव कौन बढ़ावे
कौन घटावे मान पुरानी
दुनिया तो है आनी जानी।

कविता संग्रह का शीर्षक 'दुनिया तो है आनी जानी' से कवि जगत के तात्विक एवं दार्शनिक सत्य की ओर इशारा करता है। इसी तात्विकता की ओर संसार के सभी महान पुस्तके संकेत करती हैं, चाहे गीता हो, कुरान हो, बाइबिल हो, जेंदावेस्ता हो या अन्य। सभी धर्म-दर्शन इसी जागतिक यथार्थ की ओर संकेत करते हैं कि सभी पदार्थ क्षणभंगुर हैं, नश्वर हैं, यह दुनिया तो आनी जानी है। इस आनी जानी वाली दुनिया में फिर इतनी आसक्ति क्यों, तृष्णा क्यों? इसीलिए कवि कहता है-

मूरख चेत अहं को छोड़ो
जग प्रकाश है आँखे खोलो
एक वही है कर्म विघाता
झूठ्ठे भूला है अज्ञानी

किसके लिए रुका है दरिया
किसके लिए रुका है पानी
दुनिया तो है आनी जानी।

राजेन्द्र सिंह की कविताएँ पढ़ते हुए कवि की बेचैनी से सीधा सामना होता है। कविताओं में आज का खण्डित एवं यान्त्रिक परिवेश चिल्ला चिल्लाकर अपनी व्यथा कह रहा है। कवि की प्रश्नाकुलता, उसकी छटपटाहट अत्यन्त बेबाकी से रेखांकित होती है। यह प्रश्नाकुलता व्यवस्थाजन्य समस्याओं के समाधान की तलाश करती है किन्तु वह समाधान बाहर कही दिखाई नहीं देता। अतः कवि बार-बार अपने अन्तस में उतरता है और मौन हो जाता है। कवि स्वयं से प्रश्न करता है-

भला बताओं क्यों सहते हो
मौन हमेशा क्यों रहते हो
आग हृदय में लिए निरंन्तर
धुँआ धुँआ सा क्यों जलते हो?

जैसे छोटी-छोटी चीजे मिलकर एक बड़ा संसार बनाती हैं, वैसे ही छोटी-छोटी कविताओं के माध्यम से राजेन्द्र सिंह ने कविता का अपना संसार रचा है। समय की तल्ख सच्चाइयों का साक्षात्कार करती इस संग्रह की कविताएँ ऐसी भाषा का निर्माण करती हैं जो आम आदमी की भाषा है। एक आम आदमी दुख, दर्द, बेचैनी, पीड़ा, व्यथा, टीस, संत्रास को कवि ने बहुत कलात्मक ढंग से अपनी कविताओं में सहेजा है। इस संग्रह के लिए राजेन्द्र सिंह को साधुवाद। उन्हे राम की नही राम कथा की आयु प्राप्त हो।

पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय।

शहर समता
शहर समता
शहर समता

'कुछ कदम साथ मेरे आइये': राजेन्द्र सिंह

नंदल हितैषी

यह निर्विवाद सत्य है कि किसी भी रचनाकार का साहित्य उसके व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप अपने में समाये रहता है।

हिन्दी साहित्य में मुक्तकों की अपनी एक साहित्यिक और ऐतिहासिक परम्परा रही है, बहुत मजबूत परम्परा। चार पंक्तियों का मुक्तक एक लोकप्रिय छंद रहा है, न केवल पढ़ते-पढ़ते अर्थबोध के लिए बल्कि गुनगुनाने और सहजता से याद होने के लिए भी। सूत्रों, मुहावरों और लोकोक्तियों की तरह इसकी पंक्तियाँ अनायास ही कौंधती हैं और पड़ताल करती हैं अपने सारे सरोकारों से, समय और उसकी पारदर्शिता से।

सामान्य रूप से काव्य को दो श्रेणियों में रखा जाता है, पहला दृश्यकाव्य और दूसरा है श्रव्यकाव्य, जबकि नाटक दृश्य और श्रव्य दोनों होता है। श्रव्यकाव्य की भी दो धाराएँ हैं - पहला प्रबन्ध काव्य और दूसरा है मुक्तक काव्य। हम यहाँ मुक्तक विद्या की बात कर रहे हैं। मुक्तक यानी कि चार पंक्तियों वाला, यानी कि 'चौपदे' की बात।

प्रारम्भ में इन चौपदों को पत्र-पत्रिकाओं में बतौर पूरक (फिलर) के रूप में प्रयोग किये जाने की परम्परा रही है। लेकिन आज यह अपने आप में एक महत्वपूर्ण स्वतंत्र विधा के रूप में रेखांकित किया जाता है। इधर लगातार मुक्तकों के एकल और सम्पादित संग्रहों की वृद्धि हो रही है। जो विधा विशेष के लिए सुखद है।

पत्र-पत्रिकाओं के साथ-साथ कवि-गोष्ठियों और कवि-सम्मेलनों में भी मुक्तकों का अपना एक अलग मिज़ाज़ रहा है, एक ठ्ठसक भी रही है। यह कहना समीचीन होगा कि आज मुक्तकों की परम्परा वाहवाही लूटने का जैसे एक माध्यम सी बन गई है, लेकिन यह माध्यम तभी संभव है जब

सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक या आर्थिक सरोकारों के साथ शिल्प की मौलिकता भी प्रभावी हो।

मुक्तक आज लघुकथा की तरह एक जरूरी और सामयिक विधा बनता जा रहा है। कारण यह है कि आज जीवन की भागदौड़ और उसकी जद्दोजहद में हर व्यक्ति के पास समय की कमी है। साथ ही साथ स्वस्थ मानसिकता की भी कमी है, आज समय नहीं है किसी के पास कि मोटे-मोटे खण्डकाव्य या प्रबन्ध काव्यों को पढ़ सके। ऐसे में निश्चय ही मुक्तकों की सम्भावना बढ़ी है।

शिल्पगत नजरिये से मुक्तक ग़ज़ल विद्या के काफी करीब लगता है। यथा ग़ज़ल की प्रारम्भिक दो पंक्तियों जिसे ग़ज़लगो 'मतला' कहते हैं, तीसरी पंक्ति और चौथी पंक्ति का युग्म अपने अर्थबोध के साथ एक मुकम्मल 'शेर' कहलाता है, बशर्ते चौथी पंक्ति मतले के काफिये और रदीफ में बँधी हो। यह तो हुई मुक्तकों के संदर्भ में शिल्पगत बात। लेकिन मुक्तकों की प्रारम्भिक दोनों पंक्तियाँ शिल्प के कसाव के बावजूद मुक्त होती हैं, लेकिन मूल कथ्य की भूमिका का भी पता देती हैं। तीसरी पंक्ति का बोध, चौथी और अंतिम पंक्ति के साथ मिलकर एक ऐसा चमत्कार पैदा करता है कि 'समझदार की मौत' वाली उक्ति चरितार्थ हो उङ्गती है।

उर्दू की रुबाई विधा में भी मोटे तौर पर यही बात होती है। काव्य शास्त्र में मुक्तक काव्य का अर्थ काफी व्यापक है। प्रबन्ध से अलग हट कर रचा गया काव्य मुक्तक ही है। रुबाई के विषय में कहा जाता है कि इस विधा की शुरुआत ईसा के पूर्व में हुई। रुबाई अरबी भाषा का शब्द है तथा 'रुबा' का शाब्दिक अर्थ है 'चार'। हिन्दी में रुबाई या मुक्तक लिखने वालों में मैथिलीशरण गुप्त, पंडित केशव प्रसाद पाङ्गक, हरिवंशराय बच्चन, रघुवंश लाल गुप्त, जगदम्बा प्रसाद मिश्र 'हितैषी', पंत, निराला के अतिरिक्त, गोपालदास 'नीरज', प्रभाकर माचवे, भैय्याजी बनारसी, शमशेर बहादुर सिंह एवं गोपाल सिंह नेपाली

आदि ने इस विधा को एक गरिमा और ऊँचाई प्रदान की। आज मुक्तक का जो व्यावहारिक रुप है, उसमें पहली पंक्ति एक तरह से विषय प्रवर्तन हैं तथा दूसरी पंक्ति उस सोच को एक मजबूती प्रदान करती है। तीसरी और चौथी पंक्ति अर्थ और शिल्प दोनों में एक चमत्कार पैदा कर देती है। इसी नाते चौथी और अंतिम पंक्ति सर्वाधिक महत्वपूर्ण और प्रभावी होती है।

आज मुक्तक की परम्परा संस्कृत साहित्य के साथ-साथ अन्य बोलियों में भी अपने चलन में है, यथा अवधी, छत्तीसगढ़ी, बुन्देली, भोजपुरी, पंजाबी और नेपाल ी आदि। श्री राजेन्द्र सिंह का एकल मुक्तक संग्रह 'बेड़ियों को चोट की दरकार है' के मुक्तक आज के आधुनिक परिवेश से उपजे ताजा टटके संदर्भों, कथ्य एवं शिल्प की मौलिकता, घिसे-घिसाये और दोहराव से एकदम अलग, सहजता के साथ पाङ्गकों से साझा करते नजर आते हैं। ऐसा ही होता है जब व्यक्ति विशेष का लेखा-जोखा और उसका दुःख-दर्द लोक की परम्परा में रेखांकित होता है।

मुक्तक में सबसे महत्वपूर्ण और बड़ी बात होती है सोच, समझ, सकारात्मकता

और उसकी मानवीय संदर्भों में सार्थक अभिव्यक्ति की। आज हम जिस दौर से गुजर रहे हैं वह त्रासदी से भरा है। मानवीय संवेदनाओं की ऐसी तैसी कर दी गई है। बाजारवादी प्रवृत्तियों ने जैसे मनुष्यता के हक के तमाम नये और व्यावसायिक मुहावरों को जन्म दे दिया है, जहाँ आदमी, आदमी न हो कर मशीन का एक पुर्जा मात्र बन कर रह गया है। ऐसे में सिर्फ और सिर्फ साहित्य और कला की विधाएँ ही बेहतर मनुष्य की तलाश में रत दिखाई देती हैं।

कुछ कर गुजरने के लिए हौसलों की दरकार होती है, अगर आदमी में हौसला है, प्रयास है तो कहीं कहीं सफलता भी झिलमिला रही होती है। रचनाकार राजेंद्र सिंह कुछ इन्हीं हौसलों की बात करते हैं-

'जब कोई राह से गुजरता है
राह चलने से खुद ही बनता है
व्यर्थ ही तुम नापते हो दूरियां
मंजिल का पता हौसलों से चलता है।'

अक्सर मुगालते में हम दूरियाँ ही नापते रह जाते हैं और कमतर होती जाती है हमारी इच्छा शक्ति। कुछ ऐसा ही होता है भुलावे का मनोविज्ञान। हम अपने अधिकारों की बात तो करते हैं किन्तु गफलत में जैसे सोये से रहते हैं तथा कभी अपने कर्तव्यों के प्रति सजग और जागरुक नहीं होते हैं। समय बहुत आगे बढ़ जाता है और हम भुलावे में सही गलत की पहचान भी रेखांकित नहीं कर पाते हैं। अपने अंदर के एहसास को जगाने की बात कोई रचनाकार ही सोच सकता है वर्ना सामान्य आदमी या तो कुंङ्गित है या झुंङ्ग।

इसी बात को राजेन्द्र सिंह अपने एक मुक्तक में उजागर करते हैं :-

'समय को पहचाननें की जरुरत है
दोस्तों को फिर आजमाने की जरुरत है
बोझिल अधिकारों की नींद में जो सो गये
अब उनके एहसास को जगाने की जरुरत हैं।'

यही जरुरत समय या वक्त को आजमाने की भी होती है, उसी बहाने सही गलत की पहचान भी हो जाती है। आज आदमी की नियति में जैसे लुढ़कना, अस्थिरता का ही स्थायी भाव हो चला है। इसी स्थायी भाव के यानी इसी विषमता में रचनाकार आवाह्न करता है, हम सफ़र या हम राही बनने के लिए-

'हो सके तो, आप भी आजमाइये
एक झ्ठोकर लगा कर ही जाइये
मैं लुढ़कने के लिए पैदा हुआ हूँ
कुछ कदम तो साथ मेरे आइये।'

रचनाकार राजेंद्र सिंह खेती, किसानी और गाँव जवार से भी जुड़े हैं, जुड़े हैं अपनी माटी और उसकी सोंधी महक से। यही माटी नगीना भी उपजाती है और

सोना भी, लोक चेतना की पूरी भूमिका यहीं से उपजती है। इसलिए 'लोक' शास्त्रीयता से पहले की चीज माना जाता है। रचनाकार राजेंद्र सिंह का मानना है कि-

'जिन्दगी के लिए ही जीना है
घूँट-घूँट अश्कों को रोज पीना है
कौन कहता है सिर्फ मिट्टी है
परखों जाँचों, यही नगीना है।'

यहां शिल्प का कसाव भी गौरतलब है। छोटी-छोटी पंक्तियों में जहाँ उलझाव के ताने बाने नहीं है, अर्थ स्वतः ही विस्तारित होता है। उनके एक मुक्तक में व्यंग्य की मारक क्षमता देखिए-

लिए चुनौती देश में यह पूरा परिवेश खड़ा खड़ा है
नौकरशाह मिले नेता से एक 'भ्रष्ट' अवशेष खड़ा है।
ङङङ
जो भी खाइयों से डरते हैं
खुद की तनहाइयों से डरते हैं
बात क्या करेंगे खुद्दारी की
जो अपनी ही परछाइयों से डरते हैं।

अंत में अपनी माटी की गंध समेटे इस संग्रह में कुछ भोजपुरी मुक्तकों की भी परम्परा समाविष्ट है। राजेन्द्र सिंह जी मन और सोच से एक संवेदनशील कवि हैं। छटपटाहट की स्थिति और उसकी बेचैनी ही कुछ रचने के लिए माहौल बनाती है। रचाव की भी अपनी एक भाषा होती है, एक संस्कार होता है, जो आगे की भूमिका तय करता है। जो सबसे बड़ी बात रचनाकार में है वह है सकारात्मक 'एप्रोच' और उसकी सोच। रचनाकार अगर कहीं उपदेशक की भूमिका में दिखता है तो वह दूसरों के लिए नहीं, बल्कि खुद अपने लिए ही। यही है साधु का स्वभाव। 'एक तीली से प्रकाश रचने' की बात बहुत बड़ी है और महत्वपूर्ण भी।

'आँख है पर एक कतरा जल नहीं है' जैसी पंक्ति आज की आमानवीयता पर बहुत करारे ढंग से, और सलीके से व्यग्यं उभारती है। यहाँ रचनाधर्मिता का भी स्वागत है और रचनाधर्मी का भी। 'मंदिरों में पत्थर के देवता तो मिलते हैं किन्तु पत्थर दिल भी पसीज सकें ऐसे आदमी नहीं मिलते।' गुम होते मानवीय संदर्भों के प्रति रचनाकार का चिन्तित होना और युग बोध का रेखांकन सार्थक है। रचनाकार प्यार की सौगात लिखने पर भी बल देता है, साथ ही प्रयोगधर्मिता को भी तरजीह देना, एक तरीके से समय के साथ संवाद ही है। तभी तो वह कहता है- '

हो चुकी उपदेश की खेती बहुत
अब प्रयोगों का यहाँ संवाद लिख।'

यह मुक्तक संग्रह निश्चय ही पाङ्कों की सोच के साथ संवाद स्थापित करेगा। पहली कृति होने के कारण कथ्य की मौलिकता और उसका टटकापन तथा अंदाजे

बयाँ पाङ्कों के साथ अवश्य तादात्म्य स्थापित करेगा। श्री राजेन्द्र सिंह को बधाई, शुभकामना और साधुवाद।

वरिष्ठ साहित्यकार, प्रयागराज

शहर समता
शहर समता
शहर समता

विशाल आनुभूतिक क्षितिज का काव्य

डा० जितेन्द्रनाथ पाङ्क

यह सच है कि वक्त के कंधे पर बदलते युग का जुआ रखा जाता है। वक्त का हल जब चलता है तब चाहे वह फूल बोए या बबूल उसे आंचल में बांध लेना अर्थात भोगना ही हमारी नियति है।

श्री राजेन्द्र सिंह जी गाजीपुर जनपद के एक वरिष्ठ साहित्यकार और हिन्दी के एक समर्थ मुक्तककार कवि हैं। खड़ी बोली में लिखे लगभग डेढ सौ और भोजपुरी के रचित पैंतीस मुक्तकों के संकलन ‘बेडियों को चोट की दरकार है’ को देखकर मुझे बडा हर्ष हुआ। राजेन्द्र जी को इन बहुमूल्य मुक्तकों के प्रकाशन पर मेरी बधाई ।

इन मुक्तकों का आनुभूतिक क्षितिज अत्यन्त विशाल है। यह व्यक्ति से शुरू होकर विश्व तक जाता है, जिसमें समाज, देश, जैसे अनेक पड़ाव हैं। समय की दृष्टि से इसमें अद्यतन युग से लेकर कहीं-कहीं अतीत के पन्ने भी फड़फड़ा उङ्गते हैं। जहाँ तक व्यक्ति का प्रश्न है उसके रचनात्मक व्यक्तित्व और सकरात्मक सोच पर झ्रोकर मारने वाले अनेक बन्धु मिल जाते हैं-

तप रही है जिन्दगी तो गम नहीं है
एक दिन कुंदन बनेगी कम नहीं है
मौत भी आये तो आये क्या फिकर है?
रंग फीका कर दे किसी में दम नहीं है।

रंग फीका करने की इन कोशिशों का कवि आदि हो चुका है। वह उन्हें आमंत्रित करता है-

हो सके तो आप नी आजमाइए

एक झोंकर ही लगाकर जाइए
मैं लुढ़कने के लिए पैदा हुआ हूँ
कुछ कदम तो साथ मेरे आइए।

आप नजर उठ़ाकर देखिए कि किस दौर से हम गुजर रहे हैं। मूल्यों और आदशों के अवमूल्यन के इस उपभोक्तावादी युग में मूल्यनिष्ठ, आदर्शवादी एवं दृढ चरित्र वालों से लोग डरते हैं, उनसे टकराने और उन्हें गिराने की कोशिश करते हैं, किन्तु जिनसे उन्हें टकराने की जरूरत है वहाँ वे दुम दबाकर भागते हैं। ऐसे चरित्र के लोग युग की विभीषिका से क्या लड़ेंगे जो अपनी ही परछाईयों से डरने लगे हैं। मुहावरों में कसी हुई इस भाषा में युग के यर्थाथ का अंकन दृष्टव्य हैं-

कैसा दौर है कि लोग अच्छाईयों से डरते हैं
सज्जनों से लडतें हैं आतताईयों से डरते हैं
सामना क्या करेंगे वो अंधकार का
जो खुद अपनी ही परछाईयों से डरते हैं।

मुक्तकों में प्रकाश और अंधकार का संघर्ष बराबर चलता है। आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि हमारे समाज और देश में भी प्रकाश की आशा में परिवर्तन तो होता है किन्तु परिवर्तन की आशा कुछ ही दिनों में निराशा के अंधकार में लीन होने लगती है। राजेन्द्र जी के बहुसंख्यक मुक्तकों की अन्तर्वस्तु यही है। हाँ, आप मूलतः आशावादी हैं, क्योंकि आप अपने वक्त को सकारात्मक दृष्टि से देखते हैं। वह कहते हैं-

तन का ही नहीं मन का इतिहास भी रचो
कल्पना के साथ कुछ यर्थाथ भी रचो,
जिन्दगी गुम हो रही है अन्धकार में
एक तीली ही सही प्रकाश भी रखो।

समय के रूबरू होना कविता के लिए कठ़िन कार्य होता है किन्तु कवि राजेन्द्र सिंह जी उसके सम्मुख खडे होते हैं और उसके एकाधिक तल्ख चित्र पेश करते हैं-

देख लो मौसम यहाँ बदला हुआ है
वक्त के कंधे पडा युग का जुआ है
फूल बोए या समय बबूल बोये
ऑचल में बाँध लेना ही दुआ है।

कवि ने चार पक्तियों में बदले हुए मौसम अर्थात परिवर्तनशील जमाने का चित्रण किया है। यह सच है कि वक्त के कंधे पर बदलते युग का जुआ रखा जाता है। वक्त का हल जब चलता है तब चाहे वह फूल बोए या बबूल उसे आंचल में बांध लेना अर्थात भोगना ही हमारी नियति है। इसी तरह वह पूरी शताब्दी पर दृष्टिपात करता हुआ अपना निर्णय देता है कि किस प्रकार देश के लिए बलिदान होने वाले महापुरुषों के उत्तराधिकारी होकर भी हम जाति के घेरे में घिरकर इस सदी में बौने हो गए है-

आदमी लाचार होता है खुदी के सामने

नज़र में खुद गिरा है बदी के सामने
उफ! महापुरुषों की कीमत जाति से है आजकल
आदमी बौना हुआ है इस सदी के सामने।

इसी बात को कवि इतिहास के परिप्रेक्ष्य में देखता है। कवि जनता का आवाहन करता है कि वे अपने प्रतिनिधियों के चरित्र को देखें, सोचें, रामझें और उसका मूल्यांकन करें। ये कितने दायित्वों के प्रति जिम्मेदार रह गए है। इसे आँख खोलकर देखने को कवि कहता है। वह बात को और भी साफ कर देता है। उनकी रक्षा ही मानों राष्ट्र की सुरक्षा हो गई है और उनका हित ही जनता का हित हो गया है। जब जनता के प्रतिनिधियों का सारा क्रिया-कलाप स्वार्थ केन्द्रित हो गया है, तब तो पुराना इतिहास बदलेगा ही 'ताल झ्ंाककर देखें तो' का तात्पर्य शायद कवि ऐसे बदल ाव को चुनौती देने को ललकार रहा है-

जनता के प्रतिनिधि हैं कैसे सोच-समझकर देखें तो जिम्मेदार कहाँ हैं कितने आँख खोलकर देखें तो
उनकी रक्षा राष्ट्र सुरक्षा उनका हित जनता का हित है बदलेगा इतिहास पुराना ताल झ्ंोककर देखें तो।

इसके बाद कवि लोकतन्त्र के अंतर्विरोधों और निरन्तर गिरते स्तर का चित्रण विविध प्रकार से अनेक मुक्तकों में करता है। उनमें से एक उदाहरण निम्नवत है-

कब तक जनता को झाँसे में डाल खजाना लूटेंगे
जाति धर्म के ओझल में रख भाग्य देश का कूटेंगे
समझ गई है जनता अब तो समाजवाद, सामाजिक न्याय एक जुटता की चोट पडेगी तभी ये बन्धन टूटेंगे।

कवि आशावादी है। जो आशावादी होता है वह अपने भविष्य में विश्वास का धनी होता है। कवि राजेन्द्र सिंह जी कर्मयोग में विश्वास करतें हैं-

कर्म के हाथों नया इतिहास बनता है
कर्मशीलों से मधुर संसार बनता है
आलसी क्या इस जहाँ में कर सका है
बस पसीना ही यहाँ मीनार बनता है।

मैं श्री राजेन्द्र सिंह जी को उनकी इस रचना के लिए बधाई देता हूँ और हृदय से कामना करता हूँ कि वह इसी प्रकार की उत्तमोत्तम कृक्तियों से हिन्दी कविता का श्रृंगार करें।

शब्द समता

यादों का साहित्यिक सफर और बाबू राजेंद्र सिंह

डॉ. वेद प्रकाश पांडेय

मेरे रेलवे स्टेशन प्रबंधक की अंतिम चुनौतीपूर्ण यात्रा धीना रेलवे स्टेशन के बाद सन् 2006 में जमानिया रेलवे स्टेशन से प्रारंभ हुई। मैंने भी बड़ी निष्ठा-लगन एवं परिश्रम से रेलवे को संवारने का प्रयास किया। अंततः 31 मई 2010 को वहॉं से सेवानिवृत्त हुआ। जमानिया रेलवे स्टेशन पर नौकरी के दरमियान साहित्यिक अभिरुचि के चलते मेरा परिचय सौरभ साहित्य परिषद, बरुइन, जमानिया, गाजीपुर के संरक्षक बाबू राजेंद्र सिंह से हुआ। आप उन दिनों बिहार राज्य के शिक्षा विभाग से जुड़े विद्यालय में प्राध्यापक थे। प्रायः छुट्टियों में रेल से अपने गॉंव बरुइन आते थे। नमस्कार बंदगी होती थी। आप प्रायः नौकरी के वक्त मेरे संग बैङ्ने से कतराते थे। डुमराव जाते समय डाउन प्लेटफार्म की सीमेंट की बनी सीट पर कहीं बैङ्के रहते, गाड़ी आती तो टिकट लेकर चले जाते।

सौरभ साहित्य परिषद, बरुइन, जमानिया, गाजीपुर उत्तर प्रदेश की स्थापना आपकी विशेष पहल पर सन 1978 ईस्वी में हुई थी। आपकी संस्था के साथ श्री शिवजी सिंह का गहरा लगाव था जो बाबू राजकिशोर सिंह महाविद्यालय बरुइन, जमानिया के मैनेजर थे तथा आपके भतीजे ही लगते हैं। गॉंव के सम्मानित प्रधान बाबू बलवंत सिंह बाबू लल्लन सिंह जैसे लोगों की इस संस्था में आस्था थी। डॉ कुंदन पांडे, हिंदू डिग्री कॉलेज के डॉक्टर मदन गोपाल सिन्हा भी संस्था से जुड़े कार्यक्रमों में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते थे।प्रतिष्ठित नागरिक बाबू उमेश सिंह, श्री राकेश सिंह सहित नगर पालिका अध्यक्ष श्री अनिल कुमार गुप्ता भी इस संस्था के प्रति श्रद्धानत थे। बाबू राजेंद्र सिंह के साहित्यिक मित्र श्री हरिवंश पाङ्क गुमनाम का भी इस संस्था से चोली दामन का संबंध था। इस संस्था के प्रति जनपद की आस्था का भी एक ऊंचा फलक है। इसका कारण है कि संस्था द्वारा बाबू राजेंद्र सिंह की पहल पर साहित्य चर्चा, कवि सम्मेलन, साहित्य सेवियो का सम्मान तथा पुस्तकों का लोकार्पण समारोह आदि होता रहता था। मेरी उपस्थिति में मरहूम कवि ग़ज़लकार हरिवंश पाङ्क गुमनाम की भोजपुरी पुस्तक 'पिरितिया क उझकुन' का लोकार्पण समारोह इसी संस्था के बैनर पर राजकिशोर सिंह महाविद्यालय में सम्पन्न हुआ था। जिसमें मैं स्वयं, डॉक्टर जितेंद्र पाङ्क, डॉक्टर उदय प्रकाश, श्री गुमनाम, डॉक्टर पी.एन. सिंह व चेयरमैन श्री अनिल कुमार गुप्त मंच पर उपस्थित थे।

मेरी उपस्थिति में ही गाजीपुर के प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी स्वर्गीय सूर्य नारायण पांडेय अज्ञ जी की पुस्तकों का लोकार्पण समारोह धूमधाम से सम्पन्न

हुआ था। ये पुस्तकें आप द्वारा कारावास के दिनों में रची गई थीं। बाबू राजेंद्र सिंह के भगीरथ प्रयास का ही परिणाम था कि ऐसा महत्वपूर्ण कार्यक्रम सफलता पूर्वक संपन्न हुआ। इस पुनीत अवसर पर सूर्य नारायण पांडेय अज्ञ जी के ज्येष्ठ पुत्र श्री विजय शंकर पांडे जी, जो कभी उत्तर प्रदेश शिक्षा विभाग के निदेशक हुआ करते थे, अस्वस्थता के बाद भी इस लोकार्पण समारोह में शामिल हुए थे। उनके अनुज जो पूर्व मध्य रेल हाजीपुर के प्रमुख

परिचालक अधिकारी थे उन्हें भीआना था। लेकिन व्यस्ततावश नहीं आ पाए। इस कार्यक्रम में सिलचर असम विश्वविद्यालय पत्रकारिता विभाग के प्रोफेसर डीन डॉ. ज्ञान प्रकाश पांडे भी शामिल हुए थे। सबका सम्मान अंगवस्त्रम के साथ एक साथ किया गया था।

इस परिषद के बैनर तले साहित्य प्रेमी बाबू राजेंद्र सिंह समय-समय पर हिंदी साहित्य प्रेमियों का सम्मान भी करते थे। मेरी उपस्थिति में गौरी शंकर मिश्र का भी सम्मान हुआ। वे पूर्व रेलवे हावड़ा में वित्त अधिकारी थे तथा रेवतीपुर, गाजीपुर के निवासी थे। भोजपुरी खड़ी बोली में आपने साहित्य जगत को 8 से10 कृतियां दी हैं। उनका संस्था द्वारा भव्य समारोह आयोजित कर सम्मान किया गया था। अब वह भी इस दुनिया में नहीं।

ख्यातिप्राप्त गीतकार ओम धीरज का, जो उन दिनों आप अपर आयुक्त पद पर सुशोभित थे, साहित्यिक सम्मान भी मैंने अपनी आंखों से देखा है। प्रतिष्ठित वृद्धजनों, शहीदों, विद्वानों को सादर सम्मान देना जैसे बाबू राजेंद्र सिंह जी के संस्कार में बसा है। अभी हाल ही में आपने गांव के एक प्रतिष्ठित पुलिस अधिकारी का ग्रामीणों के बीच समारोह आयोजित कर स्वागत किया गया।

कुछ महीनों पूर्व आपने अखिल भारतीय कवि सम्मेलन का आयोजन किया। उसमें गांव के बगल स्थित गायघाट के सन 1961 बैच के बिहार के आईएएस अधिकारी बाबू राम उपदेश सिंह का भव्य समारोह में सम्मान किया गया। आप भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी के साथ-साथ हिंदी एवं भोजपुरी के सुपरिचित हस्ताक्षर हैं। चित्रांगदा, माटी का झूङ्ग, गीतायन इत्यादि आप की महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं।

आपके कुशल निर्देशन में वर्षों तक 'जमदग्नि वीथिका' साहित्यिक पत्रिका का श्री संजय कृष्ण जैसे युवा संपादक के सहयोग से प्रकाशन होता रहा है। प्रतिष्ठित कवियों लेखकों का लेखकीय सहयोग भी खूब मिला। आप एक संवेदनशील रचनाकार कवि, लेखक, वक्ता एवं चिंतक हैं। समय-समय पर गृहस्थी से फुर्सत निकालकर सृजनरत रहते हैं। महान शब्द शिल्पियों की याद में संगोष्ठियां कराते हैं। दिवंगत साहित्यकारों के ऊपर स्मारिका निकालने में सहयोग देते हैं। डॉक्टर शिव प्रसाद सिंह (प्रख्यात उपन्यासकार एवं कहानीकार) की संगोष्ठी में मैं सेवानिवृत्ति के बाद यहां सम्मिलित हुआ।

डॉक्टर साहब बाबू राजेंद्र सिंह के बगल के गॉंव जलालपुर के निवासी थे। भले ही सीमांकन में वह गॉंव चंदौली जिला में है तो क्या हुआ, महान व्यक्तित्व किसी एक गांव

शहर, जिले, प्रदेश या देश के नहीं होते।

आप गद्य, पद्य के कुशल कलमकार हैं आपके गद्य की एक बानगी प्रस्तुत है, जिसमें इनकी स्पष्टवादिता का स्वरूप झलकता है -'प्रतिष्ठा अपनी डफली अपना राग या अपने मुंह मियॉं मिट्ठू बनने से नहीं बल्कि कर्मों के संस्कार पर निर्भर करती है जो यहॉं के लोगों को समझने की जरूरत है। पूरा क्षेत्र यथास्थितिवाद का प्रबल वाहक बना हुआ है। नयेपन या परिवर्तन से यहॉं के
लोगों को घबराहट होती है। इसे तोड़ने का आवेग भीतर से आंतरिक सोच, समझ, संवाद से पैदा हो अन्यथा इस अविकसित समाज में हम कुएं के मेंढक, काङ्ग के उल्लू
और पिंजरे के तोताराम बनकर रह जाएंगे।' (जमदग्नि वीथिका' से 2003, पृष्ठ - 77)|

आपके पद्यात्मक रचाव का भी एक नमूना दृष्टव्य है -

अब तो विचार कुंद हो गए हैं
संयम की बागडोर ढीली हो गई है
खतरा बाहरी नहीं आंतरिक है
जाल में तभी फंसता है कबूतर
जब दाना चुनता है
मेरा आईना सच बोलता है।

(जमदग्नि वीथिका' से 2003 से)

कुशल साहित्यकर्मी समाजसेवी श्री राजेंद्र सिंह सरल व्यक्तित्व के स्पष्टवादी मानवीय मूल्यों से सरोकार रखने वाले व्यक्ति हैं। गांव, घर, क्षेत्र का भला चाहते हैं। इन्हें दांवपेच पसंद नहीं है। भौतिकवादी परिवेश इन्हें नहीं घेरता। सेवानिवृत्ति के बाद भी अपने घर-परिवार से खलिहान की वादियों में मस्त रहते हैं। सेवानिवृत्ति के बाद भी आज तक हम दोनों की प्रीति निस्वार्थ है। सप्ताह में एक बार सुखं दुःक्खम-सुक्खम, गांव, घर एवं साहित्यिक परिवेश की बात अवश्य हो जाती है।

आपके अनुज बाबू रविनंदन सिंह हिंदी जगत के प्रतिष्ठित हस्ताक्षर हैं। आपकी सुपुत्र बाबू प्रभाकर सिंह, कुशल पत्रकार व प्राध्यापक हैं। साहित्यिक परिवेश आपके संयुक्त परिवार में समाहित है। मुझे आज 12 वर्ष सेवानिवृत्त हुए हो गया। ल `किन आज मुझे आपका झोली
भर-भर स्नेह मिलता रहता है। समय-समय पर पढ़ने हेतु पुस्तकें भेजते रहते हैं। फोन पर साहित्यिक चर्चाएं करते हैं।

कुछ माह पूर्व जब आपने बाबू राम उपदेश सिंह 'विदेह' का साहित्यिक सम्मान किया था, जिसमें मैं दुर्भाग्यवश मॉं के निधन के कारण सम्मिलित नहीं हो पाया था। आपने सम्मान का अंगवस्त्रम के रूप में मेरे हिस्से का शाल डॉक्टर अंगद तिवारी से मेरे आवास पर भिजवाया। डॉ. अंगद जी आपके गॉंव के हैं। आप इन्हें कभी पढ़ाएं हैं। उनके हृदय में सिंह साहब के प्रति बड़ा आदर है। मैं उनकी यह संवेदनशील ता देखकर दंग रह गया था।

31 मई 2010 को जमानिया रेलवे स्टेशन से सेवानिवृत्ति के बाद जो मेरा विदाई समारोह हुआ, वह भी एक ऐतिहासिक अवसर था। इसमें आप सहित डॉक्टर मदन गोपाल जी रेलवे स्टेशन रेल कर्मियों सहित, ग्राम प्रधान, ब्लाक प्रमुख का नेह-स्नेह भुला नहीं पाता हूँ। इस समारोह में बाबूराम उपदेश सिंह विदेह भी पटना से उपस्थित हुए थे, साथ में संस्था के प्राय सभी लोग। बाजे-गाजे के साथ विदाई हुई थी। आपके पुत्र बाबू प्रभाकर सिंह के कुशल प्रयास से दैनिक जागरण में फोटो के साथ लंबी खबर भी छपी थी।

आप डॉक्टर अंगद तिवारी से समय-समय पर पढ़ने हेतु पुस्तके भेजते रहते हैं। अभी हाल में आपने कविवर श्री राम उपदेश सिंह विदेह की महनीय काव्यायात्रा सहित बाबू रविनंदन सिंह का भोजपुरी में रचित दोहा संग्रह 'बाहर से सब ङ्कीक बा' भिजवाया है। इसके पूर्व गाजीपुर के क्रांतिकारी कुशल संपादक लेखक डॉ. पी. एन. सिंह के कुछ लेख जिसका संपादन विद्वान श्री अनिल सिंह जी ने किया है, जैसी महत्वपूर्ण पुस्तकें स्वाध्याय के लिए भेजवाए।

कुशल संपादक, उपन्यासकार, कहानीकार, साहित्य मर्मज्ञ श्री रामावतार जी ने अपनी पुस्तक 'सृजनधर्मी गाजीपुरः दमदार छलांग' में लिखा है कि श्री राजेंद्र सिंह बरुइन, जमानिया, गाजीपुर के निवासी हैं। आपका जन्म 4 जुलाई 1951 में हुआ। आप प्रौढ़ कवि एवं लेखक हैं। 'सौरभ साहित्य परिषद' के द्वारा कवि एवं विचार गोष्ठियां किया करते हैं। आपके तीन काव्य संग्रह प्रकाशित हुए हैं। वेहैं-'बेड़ियां को चोट की दरकार है' -सन 2014। 'आओ मेरे गांव- 2015 तथा 'दुनिया तो है आनी-जानी' 2017। आपने अपनी कविताओं में गॉंव, उसके लोग और उनकी समस्याओं को नए ढंग से देखने-समझने और उन्हें टटके बिंबों-प्रतीकों से मुखरित करने का प्रयास किया है।

(सृजनधर्मी गाजीपुर, दमदार छलांग', रामअवतार, पृष्ठ 101)

प्रतिष्ठित पत्रिका 'हिंदुस्तानी त्रैमासिक' भोजपुरी पर केंद्रित विशेषांक, इलाहाबाद में मैंने जुलाई-सितंबर 2018 के अंक में बाबू राजेंद्र सिंह के विषय में लिखा कि - 'श्री राजेंद्र सिंह संवेदनशील एवं रचनाकार व्यक्तित्व के धनी, खड़ी बोली एवं भोजपुरी दोनों में समानांतर रचाव करने वाले विद्वान साहित्यसेवी हैं। आपने अपने संरक्षण में जमानिया से 'जमदग्नि वीथिका' का प्रकाशन करवाया। बरुइन साहित्य परिषद जैसी साहित्यिक संस्था के सर्वेसर्वा हैं। इस संस्था के बैनर तले आपने वयोवृद्ध भोजपुरी, साहित्यकार श्री गौरी शंकर मिश्र 'मुक्त' ओम धीरज, वंश नारायण सिंह 'मनज', हरिवंशराय पाङ्कक 'गुमनाम', अनंत देव पांडेय 'अनंत' जैसे भोजपुरी साहित्य सेवियों का भव्य समारोह कर सम्मान किया।

(हिंदुस्तानी त्रैमासिक जुलाई-सितंबर 2018, पृष्ठ 97)

सारांश के रूप में जमानिया रेलवे स्टेशन और सौरभ साहित्य परिषद से जुड़ी यादों को जिंदगी के सुहाने सफर के दायरे में रखकर, इसे अपने जेहन में

सजाकर संस्मरणात्मक बना दिया हूँ, क्योंकि अतीत से जुड़े ये पन्ने जब भी अपनी मस्तिष्क की डायरी से उलटता पलटता हूँ तो जिंदगी जीने का मन करता है। लगता है यह दुनिया खूबसूरत लोगों से भरी है। स्मृतियों में विचरण करने पर मन में कोयल बोलने लगती है। बेला के फूल से मन महमह करता है। झोली भर-भर स्नेह की पंखुड़ियों से गुलाल लुटाने वाले बाबू राजेंद्र सिंह जैसे सहृदय ,सरल अतिथि सत्कार करने वाले बाबू राजेंद्र सिंह जैसे सहृदय ,सरल अतिथि सत्कार करने वाले, मानवीय मूल्यों की सजीव मूर्ति को शतायु की मंगलकामना करते हैं।

इंदिरा नगर, सुंदरपुर, वाराणसी

शहर समता
शहर समता
शहर समता

कवि राजेन्द्र सिंह का रचना संसार

दिव्यलता शर्मा

वैश्वीकरण के इस दौर में दुनिया काफी छोटी हो गयी है। गाँव-गाँव, शहर-शहर ही नहीं, राज्य-राज्य सहित देश-देश तक करीब आ रहे है। एक दूसरे के भूखण्डों की संस्कृति, समाज एवं व्यवस्थाएँ लोगों को रास भी आ रही हैं। इण्टरनेट का ताना-बाना यूँ फैला है कि विश्व अब विश्वगाँव हो गया है। सभी निकटता का अनुभव कर रहे हैं सिवाय मानव के। वह दूर चला गया तो अपनी प्रकृति से, समाज से, संस्कारों से क्योंकि वह नये मूल्यों को न ठ्ठीक से अपना पाया है और न ही पुराने मूल्यों को पूरी तरह से छोड़ पा रहा है। वह एक प्रकार की रिक्तता से भर गया है, 'हॉलोमैन' बन चुका है। ऐसे समय में अशान्ति, अस्थिरता और अव्यवस्था के बीच कवि-हृदय का व्यथित होना स्वाभाविक है। इसी आम आदमी के दुःख-दर्द, राग-विराग, टीस, यन्त्रणा, अजनबियत और अकेलेपन को कविवर राजेन्द्र सिंह ने अपने तीन कविता संग्रहों का केन्द्रीय विषय बनाया है। उनका पहला काव्य संग्रह 'बेड़ियों को चोट की दरकार है' सन् 2014 में प्रकाशित मुक्तक संग्रह है और सद्यः प्रकाशित दो काव्य संग्रह 'आओ मेरे गाँव में' तथा 'दुनिया तो है आनी जानी' प्रकाशित हो चुके हैं। तीनों की भावभूमि एक सी है किन्तु इसे एकरसता नहीं कहा जा सकता। कहा जाता है- ऊप एज्पी द थ्र्रूीलि ग ल्हत्स्रूीं ह् ज्दू ंम्दसे ग्रं स्र्वि, यानी काव्य संसार अपार है और कवि उसका स्रष्टा है। कवि होना एक बड़ी जिम्मेदारी है, क्योंकि वह स्रष्टा है, स्वयंभू है। यदि उसी से कोई त्रुटि हो गयी तो संसार का सौन्दर्य खो जायेगा। कवि लोक से ही भाव लेता है, अनुभव लेता है इसलिए उसका भी कर्तव्य बनता है कि वह उन भावों और अनुभवों को शब्द के रूप में मूर्तित कर बिना कुछ छिपाए लौटा दे, उस लोक के प्रति सहृदय, सकरूण और सेवा हेतु तत्पर रहे। राजाओं के प्रशस्ति-गान गाये या न गाये, मादक-मदिरा के गीत लिखे न लिखे किन्तु अपनी रचना में उन शोषित-पीड़ित की ओर लोगों का ध्यान जरूर दिलाये जो समाज में रहते हुए भी उसकी मुख्य धारा से कटे हुए हैं। इस क्षेत्र में राजेन्द्र सिंह जी ने अपनी लेखनी चलाई है। भय, भूख और भ्रष्टाचार की मार के बीच मादक मदिरा भरे गीत कवि को तनिक भी पसन्द नहीं, अपितु वह तो कहता है-

मसनद की बातें अब छोड़ो
सोफा और दीवान
गुदडी में पैबंद गॉंथते
उनके लिए रचो।

(उनके लिए रचो, आओ मेरे गाँव में' से)

कवि के सम्पूर्ण रचना कर्म को यही भाव ऊष्मा देते चलते हैं। निस्सन्देह श्री सिंह जनकवि हैं। देश, समाज, परिवार और व्यक्ति मन में जो झंझावत आया है उसे कवि ने देखा-निरखा-परखा है। कवि ने स्वयं स्वीकार किया है- 'इस संग्रह में बेवाकबयानी द्वारा मानव निर्मित व्यवस्था पर उँगली उङ्गायी गयी है, जिसे हर घर-परिवार, गाँवं समाज में देखा और महसूस किया जा सकता है' ('आओ मेरे गाँव में.' 'आमुख' से) कवि के निजी जीवन के सुख-दुःखात्मक सन्दर्भ उसे जीवनानुभव प्रदान करते हैं। वहीं अपने चौतरफा फैले समाज के प्रति भी यह जागृत है, यह जागृति उसे और उसकी चेतना को परिष्कृत करती है। स्व-जीवन के कटु अनुभवों की अभिव्यजिना करते हुए कवि कहता है-

होम करने के पलों में/ हाथ मेरा जल गया है/ मुझको अपनी जिन्दगी का/ एक परिचय मिल गया है/ रोशनी के हेतु तिल-तिल/ मैं जला प्रतिपल-निरन्तर/ कर दिया दिवाल काली/ ऐसा कोई कह गया है। ('परिचय', 'दुनिया तो है आनी जानी' से)

यह मूलतः कवि का आत्माभिव्यंजन है। भाव-भूमि का स्तर भी कुछ-कुछ 'निराला के स्नेह-निर्झर बह गया है' जैसा है। कवि प्रायः किसी क्षण को दो बार जीता है चाहे वह आनन्द का हो या शोक का, निराशा का हो या उत्साह का, उन क्षणों को वह पहले भोक्ता के रूप में जीता है और पुनः सृजन के क्षणों में वह उन्हें दुहरा कर जीता है। इसीलिए सृजनकर्म को पीड़ादायक कहा गया है। ओशो ने सृजन को चेतना का उच्च शिखर माना है। यह किसी खड़ी ढाल पर चढ़ने जैसा है, गुरुत्वाकर्षण के विरुद्ध यह चढ़ाई इतनी आसान नहीं होती। किन्तु यह पीड़ा, यह दुःख, यह एक तरह का अवसाद ही उसकी चेतना को मॉंजता है। इस सन्दर्भ में अज्ञेय की पंक्तियाँ बरबस ही स्मृति-पटल पर रेखांकित हो जाती हैं-

दुःख सबको माँजता है/ और/ चाहे स्वयं सबको मुक्ति देना वह न जाने/ किन्तु जिनको माँजता है/ उन्हें यह सीख देता है कि सबको मुक्त रखें।

इन कृतियों में भी द्रष्टव्य है कि कहीं श्री राजेन्द्र सिंह विद्रूपताओं को देखकर निराश तो होते हैं परन्तु कहीं बड़ी ही बेबाकी से सामने आकर कहते भी हैं-'तप रही है जिन्दगी तो गम नहीं हैं/ एक दिन कुन्दन बनेगी कम नहीं है/ मौत भी आये तो आये क्या फिकर है/ रंग फीका करदे किसी में दम नहीं है।' (बेड़ियों को घोट की दरकार है' से)

कवि के रचना-संसार में राजनैतिक कविताएँ भी हैं, जो आधुनिक व्यवस्था की पोल खोलने में सक्षम हैं। श्री सिंह सपाटबयानी में विश्वास करते नजर नहीं आते। राजनैतिक कविताओं में एक सौन्दर्य है। वक्रोक्ति सर्वत्र जीवित है पर प्रसाद गुण की अविच्छिन्न धारा कहीं थमती, रुकती नहीं, बहती चलती है, इस बहाव में उसे जो कुछ कहना होता वह उसे एक व्यंग्य भरी चुस्ती में कहता है। 'सरकारी हूँ मैं' कविता में कवि का अन्दाजे-बयाँ कुछ ऐसा ही है। इसमें वह देश की लोकतन्त्रात्मक

व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार, नौकशाही और सत्ता-उन्माद को अनावृत्त करते हुए सरकारी नौकरों की भाषा बोलते हुए कहता है-
'सबके अधिकारों का/अधिकारी हूँ मैं/ मुझसे डरो/अदब करो/ झोलियाँ भरते रहो मेरी/ देखो ! विधान हूँ मैं/ कर्म का अधिकार तुम्हारा/ फल मेरा है।' (सरकारी हूँ मैं', 'आओ मेरे गाँव में' से)

कवि चुनावों में बनने वाले जातीय समीकरणों से भी क्षुब्ध है। गौरतलब है कि आज समाज में जाति-प्रथा धीरे-धीरे ही सही समाप्ति की ओर बढ़ रही है। अन्य जातियों से भी अब लोग रोटी-बेटी का सम्बन्ध जोड़ रहे हैं। किन्तु चुनावों के आते ही सत्ताधारी जाति विशेष को
लुभाने लगते हैं। कोई ब्राह्मणवादी है तो कोई यादवों को लुभाने में लगा है और किसी ने तो शूद्र-उद्धार का ही बीड़ा उठाया है। समाचारों में पढ़ने-सुनने, देखने को भी मिल जाता है कि फलां राज्य में अमुक पार्टी की जीत मात्र जातीय, साम्प्रदायिक समीकरणों से हुई। सत्ताधारी जीतने के लिए हर बार नयें हथकण्डों को अपना कर कुर्सी तक पहुँचने का रास्ता साफ कर लेते हैं। कवि इस स्थिति को उजागर करते हुए कहता है-
'बेड़ियों को चोट की दरकार है/ ज़िन्दगी कुछ भी नहीं व्यवहार है/ जाति की होती रहेंगी खेतियाँ/ जब कि वोटों की यहाँ सरकार है।' (बेड़ियों को चोट की दरकार है' से)

आधुनिक नेताओं पर भी कवि ने तेजाबी
कलम चलायी है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् सत्ता के आमूल-चूल स्वभाव में कोई विशेष परिवर्तन न आया। अपितु परिवर्तन न होकर यह गोरे से काले हाथों में शासन का हस्तान्तरण मात्र हुआ। नारे लगाये गये। स्वप्न दिखाये गये। रेत के पुल से वे भी ढह गये। रह गयी है केवल एक पंगु आशा जो आज भी निराशा की पगडण्डियों पर भचकती हुई चल रही है। कवि की मान्यता है कि वे तो विदेशी थे किन्तु हमारे नेतागण तो स्वदेशी है किन्तु तब भी इनके धंधे खोटे हैं-
'अंग्रेजों को गाली देते/ उनसे ये सब गंदे हैं/ टके सेर तो ये थे लेकिन/ उनसे भी ये मंदे हैं/ थे विदेश के रहने वाले
/ ये अपने हैं, देशी हैं/ लूट रहे माता की अस्मत खोटे इनके धन्धे हैं।' (खोटे धंधे, दुनिया तो है आनी जानी' से)

कविवर राजेन्द्र सिंह के काव्य में इन सभी सन्दर्भों के साथ-साथ गाँव भी अपनी उपस्थिति दर्ज करा जाता है। गाँव से उनकी सम्पृक्ति है और हाँ, वह उसमें स्वयं बसते भी हैं। आप वातानुकूलित फ्लैटों में बैठे उन बुद्धिजीवियों की तरह नहीं हैं जो 'गाँव बचाओं का नारा लगाते दौड़ रहे हैं। इसी स्नेह-बन्धन के कारण ही कवि ने एक पूरे काव्य संकलन का नाम 'आओ मेरे गाँव में' रखा है। एक उदाहरण लेते हैं-
'पीपर और पाकड़ की प्यारी-सी छाँव/ सपना सा लगता है बचपन का गाँव/ जाति-धर्म भेद रहित/ जीवन का राग/ प्रेम स्नेह सप्तरंगी/ सराबोर फाग'
(बचपन का गाँव', दुनिया तो है आनी जानी' से)

लेकिन कवि केवल 'अहा; ग्राम्य जीवन भी क्या है' को ही महसूस नहीं

करता, बल्कि उसकी सच्चाइयों से भी वाकिफ़ है। खपरैलों के संगीत के भीतर भ्रष्टता, नैतिक मूल्यों की तेजी से गिरावट व बेईमानी की चोरी-छुपे होने वाली फुसफसाहटों को भी सुनता है-

मनरेगा की लूट मची है/ आओ मेरे गाँव में/ मृतक और जिन्दा दोनों/ लगे हुए निर्माण में/ नाम दर्ज है/ फर्ज नहीं है/ बैङ्के माल उड़ाते हैं/ जो समर्थ हैं/ बहती इस पावन गंगा में/ तन मन पवित्र कर जाते हैं।'

('आओ मेरे गाँत्र में', 'आओ मेरे गाँव में से)

साहित्य या काव्य चाहे जिस भाषा में हो, स्त्री के बारे में बहुत कुछ लिखा जा चुका है, लिखा भी जा रहा है। ऐसे में श्री राजेन्द्र सिंह जैसे सामाजिक मुद्दों से सरोकार रखने वाले कवि इस बारे में कुछ न कहें तो कुछ न कुछ तो छूटा-सा और अपूर्ण लगेगा ही। हालाँकि वह आधी दुनिया है किन्तु उसके बिना पूरी दुनिया गति नहीं कर सकती। क्या देश, क्या विदेश सर्वत्र उसका गौरव है। कवि की भाषा में वह स्नेहमयी व दयामयी है, उसे

लूटने वाला टूट जाता है, उसे निर्वसन करने वाला स्वयं नग्न हो जाता है-

'यह नारी/ स्नेहमयी/ यह दयामयी है/ मत लूटो/ है प्रकृति नटी की/ यह अनमोल धरोहर/ मत लूटो/ रावण को देखा, कैसे वह टूट गया?/ द्रौपदी हुई कब नंगी तुम बतलाओ तो/ दुर्योधन खुद ही नंगा हो/ जीवन से कैसे छूट गया ?'

('नारी', 'आओ मेरे गाँव में' से)

इन कविताओं, मुक्तकों में कवि दो मुद्राओं में सामने आता है, एक तो आधुनिक सामाजिक-राजनैतिक कुरुपताओं से निराश के रूप में और कहीं उपदेशक के रूप में। वह हताश तो है किन्तु इस अंधेरे आज में उसे विराट भविष्य कुछ आशामय जरूर ल गता है, तभी तो वह उपदेशकों की भाँति कहता है-

'किसके लिए रुका है दरिया
किसके लिए रुका है पानी
दुनिया तो है आनी-जानी
किसका गौरव कौन बढ़ाये
कौन घटावे मान
बात पुरानी है अनजानी
किसके लिए रुका है दरिया
किसके लिए रुका है पानी'
दुनिया तो है आनी जानी'

(दुनिया तो है आनी जानी' से)

श्री सिंह में एक फकीराना अन्दाज ही नहीं अपितु लोकनायकत्व की भी क्षमता है तभी तो वे युवाओं का आहवान करते हुए ये पंक्तियाँ उद्घोषित करते हैं-

'हे युग के युग परिवर्तन के/ कल के हे सुन्दर विहान/ कर जोड़ भारती माँग रही है है/ मांग रहा यह हिन्दुस्तान।'

शहर समता

(‘युग के युवा’, दुनिया तो है आनी जानी’ से)

इन कविताओं को पढ़ते हुए श्री राजेन्द्र सिंह का समूचा व्यक्तित्व सामने घूमने लगता है। वे एक अच्छे वक्ता व लेखक हैं। उनके वक्तृत्व का परिचय मुझे ‘राष्टष्ठेय सेवा योजना’ के सप्तदिवसीय शिविर के उद्घाटन सत्र में मिला जहाँ मैं बतौर शिविरार्थिनी उपस्थित थी। उनके छह दशक पार करने के बाद भी आप का उत्साहपूर्ण सम्भाषण शिविरार्थियों में समाज-सेवा के प्रति उत्साह और संवेदना का ज्वारभाटा उपस्थित कर रहा था। क्षेत्र में ‘दादा’ की संज्ञा से प्रसिद्ध श्री राजेन्द्र सिंह की लेखकीय प्रतिभा उस निर्झरिणी की भाँति है जो साहित्यसुधी-जनों की सर्जनात्मकता को पोषित करती हुई प्रवाहमान है।

अस्तु, कवि की रचनाएँ समय से एक संवाद हैं। वैश्वीकरण के दौर में रेत के किले से बनते-ढहते सम्बन्धों, राजनैतिक छल-छद्मों एवं मानवीय मूल्यों की च्युति से उत्पन्न पीडा ने ही इन कविताओं का सृजन किया है। यद्यपि यह कहने में भी संकोच नहीं किया जा सकता है कि तीनों काव्य-संग्रहों में कवि, कवि न होकर उपदेशक की भूमिका अधिक ही निभाने लगा है। साधारणतया सभी कविताओं को दो भागों में बाँटा जा सकता है- एक तो वे कविताएं, जिनमें कवि नैराश्य की भावना तक पहुँच गया है और दूसरी वे जिनमें वह उपदेश देने लगता है। अतः काव्य को ‘कान्तासम्मितवचः’ मानने वाले और छायावादी काव्य-सौन्दर्य के अभ्यस्त पाङ्कों के लिए श्री राजेन्द्र सिंह की कविताएँ नीरसता का विषय बन जायें तो कोई आश्चर्य नहीं क्योंकि इनमें आदर्श, सौंदर्य और यथार्थ का सन्तुलन नहीं रह पाया है।

आशा है कि इन कविताओं का सकारात्मक प्रभाव लोक-मानस पर पड़ेगा और वह खोयी हुई दिशाओं के राही’ की भाँति न चलकर आदर्शों व मानव मूल्यों से जीवन-पथ का निर्माण करेगा, ऐसी मेरी व्यक्तिगत मान्यता है।

शहर समता

बात लगी होगी और मर गये होंगे

प्रो.योगेंद्र प्रताप सिंह

शहर समता

संग्रह 'बेड़ियों को चोट की दरकार है' की पाण्डुलिपि देते हुए भाई रविनन्दन सिंह ने मुझसे भूमिका लिखने का आग्रह किया था। मैं उनका आग्रह टाल नहीं सकता था। अपनी व्यस्तताओं से समय निकाल कर जब एक शाम इस संग्रह को पलटना शुरु किया ही था कि मेरी नज़र इस मुक्तक पर ङ्घहर गयी-

टूट टूट कर बिखर गये होंगे
किसी कल्पना में फिसल गये होंगे
सोच लो वो भी कलम के बेटे हैं
बात लगी होगी और मर गये होंगे।

इस मुक्तक को पढ़कर एक बात यह समझ में आयी कि कलमकार इतना संवेदनशील होता है कि किसी 'बात' के लगने से मर जाता है। इससे एक सूत्र यह भी हाथ आया कि कलमकार अत्यन्त सूक्ष्म और नाजुक ख्याल का होता है और दुनिया को पातालतोड़ दृष्टि से देखता है। मरण एक जीवन दृष्टि भी है। मुझे गोरखनाथ की याद आने लगी- 'मरौ हे योगी गरौं।' इसी संदर्भ में ओशो की पक्तियाँ कौंधने लगी 'मैं मृत्यु सिखाता हूँ।' इसी भावबोध से मैं पूरा संग्रह पढ़ गया और पाया कि इन पंक्तियों में अर्थ एवं आशय की कई परते हैं।

राजेन्द्र सिंह एक समर्थ रचनाकार है। उन्होंने अपनी सोच, समझ, दृष्टि एवं कल्पना से मुक्तकों की एक सशक्त ज़मीन तैयार की है। इस संग्रह में टूटते दरकते आत्मीय संबंधों, अपघटित होते हुए मानवीय मूल्यों, छीजते संस्कारों, जीवन एवं जगत की विषमताओं-विद्रूपताओं, व्यक्ति की पीड़ा-वेदना, आस्था, अनास्था, घुटन, संत्रास, यांत्रिक जीवन शैली, अजनबीयत एवं अस्तित्व के संकट के अनेक चित्र हैं। ये सारे चित्र और बिम्ब हमारे आसपास के जीवन से लिए गये हैं अतः अत्यंत सजीव लगते हैं।

राजेन्द्र सिंह की कविता का परिसर अन्तःकरण का परिसर है इसलिए अन्तर्मन की सच्ची अभिव्यक्ति उनके मुक्तकों में संभव हो सकी है। आज जबकि संवेदनाएँ यांत्रिक एवं गणितीय होती जा रही हैं, कुंङ्गाओं और वर्जनाओं को साहित्य में प्रमेयों की तरह आजमाया जा रहा है, ऐसे परिदृश्य में राजेन्द्र सिंह के मुक्तक सचेत जीवन दृष्टि के संवाहक है। उन्होंने यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि सामाजिक जानवरपन, उन्मुक्त ऐंद्रिकता और नगरीय वर्बरता से कविता को बचाया जाय।

समकालीन समय पूँजीवादी बाजारवाद एवं उपभोक्तावादी संस्कृति का

समय है। समय के कुचक्रों में उलझा हुआ जीवन मनुष्यता को आज अर्थ के तराजू पर रखकर तौल रहा है। आज वस्तु-जगत की चकाचौंध और नुमायश मावनीय संवेदनाओं पर भारी पड़ रही है। ऐसे यान्त्रिक, संवेदनहीन और गहन अंधकार वाले समय में राजेन्द्र सिंह तन का नहीं मन का इतिहास रचने की बात कहने का साहस रखते हैं-

'तन का ही नहीं मन का इतिहास भी रचो
कल्पना के साथ कुछ यथार्थ भी रचो
ज़िन्दगी गुम हो रही हैं अंधकार में
एक तीली ही सही प्रकाश भी रचो।'

आज़ादी के बाद बदलते समाज राजनीति, अर्थतन्त्र, भ्रष्टाचार, अवसरवादिता, लोकतान्त्रिक एवं धार्मिक पाखण्डों की नब्ज पकड़ने में राजेन्द्र सिंह ने अपनी सजग चेतना का परिचय दिया है। आज़ादी के सपनों का टूटना, व्यवस्था के प्रति असंतोष, मोहभंग और विद्रोह जैसी स्थितियों के जन्म का मूलभूत कारण हमारी व्यवस्था की नाकामी है। यह नाकामी हमारे लिए चुनौती है। राजेन्द्र सिंह इसी ओर संकेत करते हैं-

लिए चुनौती देश खड़ा है
यह पूरा परिवेश खड़ा है
नौकरशाह मिले नेता से
एक भ्रष्ट अवशेष खड़ा है।

एक सजग रचनाकार समाज का सच्चा प्रहरी होता है। वह धर्म-राजनीति के हथकंडों को अच्छी तरह समझता है। कबीर की तरह हाथ में लुकाड़ा लेकर चलता है ताकि सामाजिक-राजनीतिक कल्मषों को जलाकर राख कर सके। आज राजनीति इंसानी मूल्यों की पहचान करने की बजाय इंसान को वोट के रूप में गिनती है। वर्ण-जाति-धर्म के खाँचों में बंटा, तरह-तरह बेड़ियों में बंधा हर भारतीय ड्डगा सा महसूस कर रहा है। ऐसे में राजेन्द्र सिंह आवाहन करते है कि 'बेड़ियों को चोट की दरकार है-

बेड़ियों को चोट की दरकार है
ज़िन्दगी कुछ भी नहीं व्यापार है
जाति की होती रहेगी खेतियाँ
सिर्फ वोटों की यहाँ सरकार है।

अपने मुक्तकों में अपनी मजबूत उपस्थिति दर्ज कराने के लिए राजेन्द्र सिंह को साधुवादा उनकी रचना यात्रा अनवरत जारी रहे, इसी शुभकामना के साथ मैं विराम लेता हूँ।

पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

शब्द समता
शब्द समता
शब्द समता

राजेन्द्र सिंह की कविताएं

सरकारी हूँ मैं

सबके अधिकारों का
अधिकारी हूँ मैं
मुझसे डरो अदब करो
झोलियाँ भरते रहो मेरी
देखो ! विधान हूँ मैं
सबका निदान हूँ मैं
कर्म का अधिकार तुम्हारा
फल मेरा है।

दर्द कैसी, कैसी पीड़ा
नित-नूतन शब्द बनाते हो
आवाज लगाते हो
होगा वही, चाहूँ जो मैं
देखो ! अधिकारी हूँ मैं
देशी नहीं, सरकारी हूँ मैं।

कंधों को केवल बदलते रहोगे

अंधे हो तुम
तेरे कंधे पर लंगड़ा है
चलते हो तुम
वह सोता है
पूँजीवाद का पोता है
साथी कहाँ?
गन्तव्य तक जाना उसे है
लक्ष्य पाना उसे है

हमराही कहाँ?
तुम्हें सिर्फ इशारे पर चलना है
उसे ही आगे बढ़ना है
और तुम-
युगों तक सवारी ही बनते रहोगे
कंधों को केवल बदलते रहोगे।

कहता कौन मौन हूँ

मेरी मुट्ठियों में जमाना है
कहो तो मसल हूँ मैं
धरती ही नहीं,
आकाश को भी कुचल दूँ मैं
मेरे इशारे पर
धरती का कलेवर बदलता है
एक रंग चढ़ता दूसरा उतरता है
फूंक दूं तो पर्वत भी हिल जाए
नदियां ही नहीं सागर भी सूख जाए
मेरा ताण्डव नर्तन ही
युग का परिवर्तन है

शहर समता

कदमों में मेरे ही
सृष्टि का समर्पण है
पहचान है मेरी
यह पहचानो मैं कौन हूँ
सासों को रोके हूँ
कौन कहता मौन हूँ?

आओ मेरे गांव में

मनरेगा की लूट मची है
आओ मेरे गांव में
मृतक और जिन्दा दोनों हैं
लगे हुए निर्माण में
नाम दर्ज है फ़र्ज नहीं है
बैङ्के माल उड़ाते हैं
जो समर्थ हैं
बहती इस पावन गंगा में
तन-मन पवित्र कर जाते हैं

यही नहीं आकर देखो तो
आँगनबाड़ी की बहार भी
पोषक बालाहार यहाँ पर
पशुओं का चारा बन बिकता
मंदिर-मंदिर चिलम चढ़ती
बोतल से परहेज नहीं है
चाहे रोगी-वृद्ध दुखित हों
परेशान बच्चे हो जाएं
पढ़ने वाले छात्र भले हों
टेप से भक्ति का शोर गूँजता
जब तक बिजली रानी रहती
बात बड़ी है काम अधेला
कैसा किस्मत कैसा खेला?

टोपी और टीके

टोपी और टीके
शिनाख्त हैं
मुसल्लम ईमान और पुण्य-कर्मों के
पर टोपी !
आज मुल्ला की हो या गाँधी की
बे-ईमान हो गई है
और टीके !
अब लूट के निशान हो गये हैं
आदमखोर !
दोनों हैवान हो गये हैं।

समाज रूपी अहिल्या

जब शासक !
लंपट और चरित्रहीन हो जाता है
साहित्यकार !
कामी शासक के इशारे पर
बाग देने लगता है

शहर समता

और
जब कोई विचारवादी
धर्माचारी बुद्धिजीवी गौतम !
पलायनवादी बन
राजनीति से कोसों दूर
आत्मशुद्धि हेतु
गंगा स्नान को जाता है
तथा मात्र शाप को ही
अपना हथियार मानता है
समाज रूपी अहिल्या
तभी छली जाती है।

शहर समता

निज धर्म

शब्दों में ढाल रहे
आँसुओं के छंद
मूढ़ मतिमंद
रोको अजस्त्र प्रवाह
करो कहानी यह बंद
अपना पेबन्द टाँकने का
भद्दा यह ढंग
भगीरथ बन तारो
आँसुओं के सैलाब से उबारो !
घाव का दर्द और दर्द का छंद
करो बन्द
दिल को बहकाने का
बचकाना ढंग
आदेश दो, बाजुओं को
रचें कर्म
जन-जन पहचाने
अपना निज धर्म
जीवन का मर्म।

शहर समता

उनके लिए रचो

आसमान तक उड़े हुए जो
बहुत हो चुकीं उनकी बातें
गर्दन तक जो गड़े हुए हैं
उनके लिए रचो।

मसनद की बातें अब छोड़ो
सोफा और दीवान
गुदड़ी में पेबंद गाँथते
उनके लिए रचो।

शहर समता

भुल्लन भूखा तड़प रहा है
रोटी एक रचो
माँ का नँगा जिस्म न उभरे
धोती एक रचो।

रचना हो तो रचो देश को
शोषण-मुक्त करो
जो जीवन से जूझ रहे हैं

उनके लिए रचो।

युग-चेतना

एक बुधिया, जान से मारी गई है
कफ़न देके इस लोक से तारी गई है
घीसू, माधव को
यही समझा रहा है
मालिक की हर बात में
गुण गा रहा है
हैं दयालु, हर किसी पर
दृष्टि अपनी डालते हैं
झोपड़ी की पीर को
नजदीक से पहचानते हैं
गांव में भगवान का
मंदिर उन्हीं का है बनाया
ठण्ड से मरने न पायें
हर कहीं कंबल बँटाया।

देखना !
मालिक की हर एक बात की
कीमत समझना
अन्नदाता या खुदा
तकदीर अपनी तुम समझना
एक पीढ़ी दूसरी से
बस यही कहती गई है

इस तरह-
युग-चेतना हर पल यहाँ दबती गई है
प्रसव-पीड़ा से तड़प
हर पल यहां बुधिया मरी है
लाश पर ही कीर्ति-
मालिक की यहाँ तनकर खड़ी है।

जीने का सम्मान

नहीं चाहिए स्वर्ग मुझे पर
धरती का वरदान तो दे दो
रख लो अपने चाँद-सितारे
जीने का सम्मान तो दे दो।

चाह नहीं है किसी स्वार्थ की
भीख तुम्हारे दान की
कर्म कर सकें इस धरती पर
चाह सिर्फ है आन की
शिक्षा और संघर्ष,
संगठन की क्षमता भरपूर हो
संयम, सजग चेतना हो
प्रतिपल अवरोधक दूर हो।

नहीं चाहिए स्वर्ण-पंजिका

शहर समता

उड़ने का सामान तो दे दो
रख लो अपने चाँद सितारे
जीने का सम्मान तो दे दो।

झुकना और झुकाना छूटे,
मिटना और मिटाना छूटे
हर आजाद पखेरू होवे,
हर आबद्ध श्रृंखला टूटे।
दिल के घर से डैश हटे अब
हो रेखांकित प्यार
हर गुल से प्यारा हो जाए
इस धरती का खार।

कङ्गिन भले हो लक्ष्य यहां पर
हाथों में संधान तो दे दो
रख लो अपने चाँद सितारे
जीने का सम्मान तो दे दो।

जाति, धर्म, भाषा का अन्तर
बोलो अब तक क्या दे पाया
श्रेष्ठ जीव कहता अपने को
क्या अब तक मानव बन पाया
विषपायी अब शिव बन जाए,
सत्य जहाँ हो गले लगाएं
सुन्दर तो सुन्दर है लेकिन
विद्रुप को सुन्दर कर जाएं।

काँटों भरी राह पर मुझको
चलने का बस ज्ञान तो दे दो
रख लो अपने चाँद सितारे
जीने का सम्मान तो दे दो।

मुट्ठी भर दो प्यार

दो भरपूर चेतना मुझको
मुट्ठी भर दो प्यार
दो विवेक हो सफल साधना
जीवन का आधार।

लोभ कभी मन क्षोभ न पाये
पूर्ण संतुलन से भर जाये
पर अन्याय न सहने पाये
दो पौरुष संचार
मुट्ठी भर दो प्यार।

गले लगा लें, हार बना लें
ऊँच-नीच सबको अपना लें
दुश्मन को भी मित्र बना लें
दो उदार व्यवहार
मुट्ठी भर दो प्यार।

शहर समता

अंधे की आँखें बन जायें
लगड़े की लाड़ी बन जायें
दीन-हीन को दिशा दिखायें
दो आचार-विचार
मुट्ठी भर दो प्यार।

कौन

कौन यहां पागल होता है
उलझन में जीता है कौन
कौन सहारा नहीं किसी का
सदा बनावट जीता कौन?

कौन छल रहा है अपनों को
राग-द्वेष में घुटता कौन
कौन खोजता है सुख-शांति
दुःख के आँसू रोता कौन?

कौन जला अपनी ज्वाला में
अपनी ढोकर बनता कौन
कौन बो रहा घृणा-द्वेष को
जाल बुनता, फँसता कौन?
कौन ढो रहा है जीवन को
बोझ बनाता है वह कौन
कौन खोदता है गड्ढे को
पहले उसमें गिरता कौन?

शहर समता

भाग्य-विधाता

इच्छाओं के जो गुलाम हैं
नैतिकता जिनकी नीलाम है
खून चूसते देश लुटेरे
ऐसे प्रतिनिधि को सलाम है।

नजरों में जो गिरे हुए हैं
अधिकारों में गड़े हुए हैं
भाग्य-विधाता उन्हें बनाना
काले मुँह जो खड़े हुए हैं?

जो भी मन में आये करना
नहीं कभी बरबादी करना
पछतावा हो जिन कर्मों से
ऐसी क्या नादानी करना?

यह चुनाव है चयन करो तुम
उजियारे को नमन करो तुम
हो विरुद्ध जनहित में जो भी
विधिवत् उसका दमन करो तुम।

भाग्य

कल्पना में पल रही है जिन्दगी
अल्पना में ही अधूरी सांस है

है सदा चाहत मुझे भी फूल की
हर जगह बस काँट ही है काँट है।

सींचता हूँ चंदनों की गांछ को
आज तक कोई सुगंधी है नहीं
आँसुओं को पी रहा हूँ छानकर
गंदगी थोड़ी भी कम होती नहीं।

चल पड़ा था आस लेकर मैं यहां
प्यार की भाषा ने पग-पग है छला
देखता हूँ आज भौतिक राह को
डूबता सूरज अंधेरा हो चला।

कर्म को ही त्यागना यह मानकर
हो रहा है जो भी जैसा हो रहा
छोड़ देना नाव को मझधार में
मान लेना भाग्य अपना सो रहा।

नारी

आँसुओं में पल रही हर भावना
बन गई हर चाह केवल याचना
ढ्ढोकरें हर पल यहां हैं ढ्ढोकरें
है तरसती आज भी हर कामना।

है युगों से दासता की बेड़ियां
हाथ में जिसने सजाईं चुड़ियां
मांग के सिंदूर मंहगे हो गये
मौन हैं इंसाफ की सब बोलियां।

युग-युगों से जहर उसने ही पिया है
हर कदम को हौसला उसने दिया है
बह न जाए सृष्टि की रचना कहीं
आँसुओं को आँचलों में भर लिया है।

कब तलक होती रहेगी बन्दगी
क्या वही ढोती रहे शर्मिंदगी?
शक्ति है वह जान लो पहचान लो
है नहीं यह एक पक्षीय जिन्दगी

रिश्तों का सलीब

मेरा हैंगर
अब मुझे डाँटने लगा है
मेरी औकात बाजुओं में आँकने लगा है
खूंटी विद्रोही बन,
अपनी सहनशक्ति खो चुकी है
दीवाल लगी है आत्मविश्लेषण में
ईंट से ईंट परामर्श कर रही है
अपने ही अंगों से संघर्ष कर रही है
और मैं,
अप्रासंगिक हो गया हूँ
रिश्तों के सलीब पर

शहर समता

उल्टा टँग गया हूँ।

नियंत्रण रेखा

श्रीमान !
जब भी आप अनियंत्रित होंगे
अलगाववादी, चरमपंथी
नियंत्रण रेखा के अन्दर घुस आयेंगे
और जब भी-
आप जाति, धर्म, सम्प्रदाय या दल को
देश से ऊपर उड़ाएंगे
ओछी राजनीति में
दो मुँहे साँप को दूध पिलाएंगे
और
टुकड़ों में तोड़ जनता को
अपना वोट बैंक
तथा
भ्रष्टाचार, लूट को
राष्ट्रीय चरित्र बनाएंगे
वे अवश्य घुस आयेंगे
लेकिन-
जिस दिन देश के लिए आप के दिल में
नियंत्रण की स्पष्ट रेखा बन जाएगी
उसी दिन देश की नियंत्रण
रेखा सुरक्षित हो जाएगी।

प्रिय लगती हैं

तुम्हारे मंदिरों से अधिक
मुझे प्रिय लगती हैं
विद्यालय की घंटियां।

गले या गुलदस्ते की तो बिल्कुल नहीं
डालियों पर झूलते फूल और पत्तियां।
नदी की कलकल
पक्षियों का कलरव
शुष्क ऊँचाई नहीं,
द्रवित पर्वत-चोटियां।
शासन बाहरी नहीं,
आत्मानुशासित चींटियां।

लाख करो प्रयास
नित नूतन अभ्यास
मुझे प्रिय लगती है
चिकनी-चुपड़ी नहीं
स्वाधीनता की स्वाभिमानी
घास की रोटियां।
पसरें हाथ नहीं
बँधी हुई, तनी मुट्ठियां।

अपनी धरती

नहीं दिखाई पड़तीं

शहर समता
शहर समता
शहर समता

वे आँखें
जिन्हें देख हम सम्हलते थे
झाँक कर सँवरते थे
नहीं मिलती वह उँगली
पकड़कर जिसे
चल सकें निःशंक।

वह वाणी
निष्कपट
निःकलंक
दिशा-निर्देश
मधुर जीवन-संदेश
भावों का अर्पण
आस्था-समर्पण
उङ्गाना
अंक से लगाना
सद्भाव-संवेदना
उच्च आचरण चेतना
गंध भरी माटी
प्यार की थाती
अपनी वह धरती
दिखाई नहीं पड़ती।

जिन्दगी क्या है?

ताल ठोंक कर
कुछ के आँसू पोंछ-पोंछकर
कुछ लड़-लड़कर
कुछ डर-डरकर
कुछ की केवल सोच-सोचकर
खींच-तान कर
बीन-बराकर
कुछ की बेहतर चलती जाए
रात्रि-दिवस में ढलती जाए
कुछ की लंगड़ी पैर खींचकर
कुछ की सरपट दौड़ लगाए
कुछ की आये
कुछ की जाए
जिन्दगी है क्या?
कौन बताए?

सामंती चरित्र

उछालकर जनता के बीच
ब्राह्मणवाद, सामंतशाही की पीड़ा
कुरेदकर पुराने जख्म
किए हो ऊँचा अपना कद
पाये हो पद, पैसा, प्रतिष्ठा
बुद्धिजीवी होने का गर्व
कर सके हो,
दलितों-पीड़ितों के दिलों पर राज
उसी सामंतशाही के दायरे में

शहर समता

जान सके हो,
जीने का मर्म
राज-धर्म
पीढ़ियों तक करने को अपना भला
सीखे हो बुद्धि से
जीने की कला
वही सामंती चरित्र
तुम्हारे आँगन में आने लगा है
जो बुरा था,
वही अब भाने लगा है।

पक्ष लिया है

पक्ष लिया है-
क्रिया-प्रतिक्रिया के मध्य
उभरते विष का नहीं,
अमृत का
मस्तिष्क के कुलबुलाते कीड़ों को
हृदय-प्लावन से डुबो देने का
मैंने पक्ष लिया है।

बिखरे तिनके समेट
बुने गये घोंसले को
न बिखरने देने का
मुद्दतों बाद सीखा है चलना
एक जुट रहना
धोना कलंक
आपसी संघर्ष
जीने की कला
भावी कल के लिए-
मैंने पक्ष लिया है।

परजीवी कीड़े नहीं
श्रम सीकरों से सँवारते जीवन
कर्मरत तन-मन-हाथों का
ठोस धरती
धूप-छाँव
अंकुरण की संभावना का
मैंने पक्ष लिया है।

गैरों को दोषी करार देने के
कवायद से पूर्व
खुद के गरेबाँ में झाँक लेने का
भाई-भाई को
खड़ा किया था
रक्त पिपासु भेड़ियों की भाँति
दो खेमों में,
इतिहास के उन भूलों को सुधारने का
मैंने पक्ष लिया है।

पक्ष लिया है
मड़राते गिद्धों के बीच

शहर समता
शहर समता
शहर समता

कबूतर उड़ाने का
स्याहियों को पी जाय
दीपक जलाने का
हर उस पत्थर के विरुद्ध
जिसने ठोकर के सिवा दिया ही क्या है?
इस समाज को हमें और तुम्हें।

राजनीति

लोक की गर्दन
तंत्र के फंदे में फँसी है
व्यवस्थापिका की नपुंसकता
अकर्मण्यता
भ्रष्ट कार्यपालिका
सर्वज्ञ न्यायपालिका
राजनीति के दलदल में धँसी है
पैसों के इर्द-गिर्द
चक्कर काटती पत्रकारिता
इसी लोकतंत्र की महिमा गा रही है
और
आम आदमी पर
व्यवस्था कहर ढा रही है।

सर पर सवार
पीढ़ पर बैठी राजनीति
मंगल गीत गा रही है
पूँजीपतियों की कठपुतली
नित, नूतन कसीदे काढ़ रही है
लोक को निचोड़ती
जीने की बुनियाद पर
अपना परचम फहरा रही है।

कर्त्तव्य

खुद को नकारने का
नित नूतन रोग पालने का
स्वयं के खिलाफ तुम्हारा षडयंत्र
हर सीमा पार कर गया है
अब तो तुम्हें
अपने ही मुँह पर
भिनभिनाती मक्खियों का भी आभास नहीं होता

ऐसा नहीं,
कि आकाश में सूरज नहीं है
फूल में खुशबू नहीं है
हवा में वह गति नहीं है
क्षिप्र धारा समय की रुक सी गई है
फिर बताओ क्यों?
तुम्हीं पहचान खोते हो
रास्ते में अपने हाथों काँट बोते हो?
जो भी तेरे पास उसमें दम नहीं है
तेरे सिने में कहीं धड़कन नहीं है
सोच में अधिकार,

शहर समता

फिर कर्त्तव्य बोलो क्यों नहीं है?

आज का मानव

कालिदास !
बैठा था जिस डाली पर
उसे ही काटता था
हंसते हैं लोग
कहते हैं- मूर्ख था
'क' 'ख' का ज्ञान नहीं
इशारा ही भाषा थी
आज का मानव !
ज्ञानी है
विज्ञानी है
प्रबुद्ध है
डाली क्यों काटे?
पैर काटता है
मानवता के विरुद्ध
प्रेम के सुमन नोच
काँटा बाँटता है

पैसा आज की मजबूरी है

पैसा आज की मजबूरी है
जीवन-जंग में जरूरी है
शक्ति, इज्जत-आबरू, प्रदर्शन है
श्याम, श्वेत बन जाता है
झूठ के लबादे में
ईमान मौन हो जाता है
न्याय-अन्याय में बदलता आदमी,
हैवान बन जाता है
पुत जाता है कालिख से दर्पण
खो देता है अपनी संज्ञा
पैसा मालिक,
आदमी मजदूर बन जाता है।

रगड़ता है नाक
गिड़गिड़ाता है
करता है शीर्षासन
भूलकर आत्म-प्रकाश
कहीं से पैसा?
आदमीयत को खोना तो नहीं
ईमान का खोटा कोना तो नहीं
फिर क्यों?
पैसा बड़ा हो जाता है
और-
आदमी, अपनी ही नजरों में
बौना हो जाता है !

कवि बनसप्ती

हाँ! वहीं बनसप्ती
आशु कवि

शहर समता
शहर समता
शहर समता

फक्कड़, और अलमस्त
निपट निरक्षर
पर आत्मबोध से पूर्ण
चाय पीते
अखबार की पंक्तियाँ पढ़ते
हर एक मुद्दे पर
बेलौस अपनी टिप्पणी देते
राह चलते गुनते
देशी प्रतीकों और शब्दों को चुनते
गँवई अपनी भाषा में कविता गढ़ते
दबे-कुचले, बेबसों की आवाज
समादृत, नहीं अशिष्ट
पक्के कम्युनिस्ट
रजक पर जातीय हीनता से परे
आत्म गौरव से पूर्ण
स्व कर्म-रथ-रथी
लोभरहित योगी
न उद्धव से लेना न माधव को देना
यथार्थजीवी
नहीं कोई आसक्ति
हाँ! वहीं बनसप्ती।

गाँव वह मेरा

पूछा, बूढ़े बरगद के दरख्त से
जरा बताओ गाँव कहाँ है?
घनीभूत छतनार वह तेरा
पहले वाली छाँव कहाँ है?

सुख-दुःख के सहभागी मन में
जहर कौन है घोल गया
सेह-प्रेम से जुड़े, दिलों को
टुकड़े-टुकड़े तोड़, गया।

कलरव करते पाँखी के
बोलो किसने पर कतरे ?
यह कैसा माहौल बताओ?
पग-पग पर खतरे।

संस्कार का वह आकर्षण
जाने कहाँ गया?
आत्मीय सम्बन्धों का कौन?
धागा तोड़ गया।

आदर का स्नेहिल संबोधन
कैसे लुप्त हुआ?
बतलाओ गंवई मीठ्ठापन
कैसे जहर हुआ?

कहाँ गयी वह माँटी जिसमें
मैं पलकर बड़ा हुआ
नहीं गाँव अब दिखता मेरा

शहर समता

जो था सुगंध से भरा हुआ।

आस्था की बेड़ी

आस्था पर चोट
सदियों से
आज भी जारी
बाजारवादी हवा में
धर्म के नाम
अधर्म की ठ्ठीकेदारी
सुख, शांति, समृद्धि,
जीवन मुक्ति की सौदेबाजी
पुण्य का फल
जातीय वर्चस्व की कहानी
आशीष, चढावे व दान का प्रतिफल
देवालय के सारे ताम-झाम
साज- बाज, वन्दनवार
आकर्षण के केन्द्र में
बैड्डी दो लोलुप आँखें
और आशीष में उड्डा एक हाथ
आरक्षित है -
आँख के अंधे गाँड्ड के पूरे
आस्था की बेडियों में आबद्ध
भक्तों के लिए।

पावन जुबान

मैं क्या जानू मंदिर-मस्जिद
जाति-धर्म का बन्धन
मैं भाषा हूँ, वस्तु नहीं
जो बटवारे के हिस्से आऊं
माध्यम हूँ अभिव्यक्ति मात्र
दिल से दिल का संवाद
वह बुनियादी ईट हिन्दी का
अमीर खुसरो मुस्लिम था
भक्तिकाल में भक्ति का गायक
भक्त कवि रसखान
कैसे तुझे बताऊँ बोलो ?
दाराशिकोह की बात
संस्कृत भाषा का जो प्रेमी
रचा एक इतिहास
महावीर और बुद्ध
छोड संस्कृत, पाली-प्राकृत अपनाया
तुलसीदास संस्कृत के पंडित
अवधी में मानस गाया
मैं भाषा अजस्र, धारा हूँ
खेमे में मत बाँटो
वाणी के पावन जुबान को
मूल, कभी न काटो।

कीचड़ सने पाँव

कीचड़ सने पाँव

शहर समता

कृषक मजबूरी जीता है
फटेहाल आजीवन
सिसकी ले-ले सीता है
खून-पसीना बहा बहाकर
जग को सुख देता
पर अपने ही कुटिल भाग्य पर
वह आँसू पीता
ना जाने हल्कू कब-कैसे
क्या-क्या जीता है?

दिया हुआ पुरखों का कर्जा
ले-ले भरता है
कर्जे में जीता
फिर, कर्जे में मरता है
अन्नदाता का नाम भले ही
लिए कटोरा हाथ
सहता रहा सदा सदियों से
पग-पग पर आघात
कमङ्ग-पीङ्ग वाले किसान का
जीवन होता है
सने पाँव कीचड़, किसान
मजबूरी जीता है।

शहर समता
शहर समता
शहर समता

शहर समता - ब्यूरो प्रमुख

देहरादून ब्यूरो - निशा अतुल्य,
सतना ब्यूरो - डॉ ऊषा सक्सेना,
रीवां ब्यूरो - साधना तिवारी,
लखनऊ ब्यूरो - मंजु सक्सेना,
जबलपुर ब्यूरो - शैली सेठ,
लुधियाना ब्यूरो - श्रद्धा शुक्ला,
जौनपुर ब्यूरो - डॉ मधु पाठक,
हैदराबाद ब्यूरो -रीना प्रदीप कुमार,
भिलाई ब्यूरो - संध्या चंदेल,
गोरखपुर ब्यूरो - चित्रा श्रीवास्तव,
दिल्ली ब्यूरो - अफरोज़ अजीज,
तिनसुकिया गोलाघाट ब्यूरो - रंजना बिनानी,
प्रयागराज ब्यूरो - डॉ आकांक्षा पाल,
भीलवाड़ा ब्यूरो - डॉ राजमति पोखरना,
इंदौर ब्यूरो - आशा जाकड़,
शिलांग ब्यूरो - डॉ अनीता पंडा,
बिलासपुर ब्यूरो - स्मृति मिश्रा 'रीति,
रायपुर ब्यूरो - सीमा निगम,
कानपुर ब्यूरो - सीमा वर्णिका,
भोपाल ब्यूरो - दीपमाला तिवारी,
दमोह ब्यूरो- भावना शिवहरे,
मण्डला ब्यूरो - डॉ अर्चना जैन
बनारस ब्यूरो - सुनीता जौहरी,
आरा ब्यूरो - सिम्पल सिंह,
बिजनौर ब्यूरो - ऋतुबाला रस्तोगी,
पठानकोट ब्यूरो - क्षमा लाल गुप्ता,
सप्तरी नेपाल ब्यूरो - करुणा झा,
धम्तरी ब्यूरो - कामिनी कौशिक,
रामपुर ब्यूरो - चंद्रिका कुमार 'चांदनी',,
मुरादाबाद ब्यूरो - अभिव्यक्ति सिन्हा,
कटनी ब्यूरो - मीरा भार्गव,
पटना ब्यूरो - अंजू भारती

संस्थापक
स्व0 कन्हैया लाल, स्व0 साधना श्रीवास्तव

सम्पादक
उमेश चन्द्र श्रीवास्तव
आरएनआई नं0 UPHIN/2001/3996

उप संपादक
डा0 अरूण कुमार मिश्रा
रचना सक्सेना

Mo. 9005239332 Email-shaharsamta@gmail.com

स्वत्वाधिकारी/मुद्रक/प्रकाशक/सम्पादक उमेश चन्द्र श्रीवास्तव द्वारा इण्डियन प्रेस (पलि.) प्रा0लि0, 36 पन्ना लाल रोड, इलाहाबाद से मुद्रित कराकर 289/238ए, (अनन्त भवन) कर्नलगंज, इलाहाबाद से प्रकाशित।

इस अंक के प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं सम्पादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अन्तर्गत उत्तरदायी तथा समस्त विवादों का निपटारा इलाहाबाद न्यायालय में ही होगा।